धरती का लहू

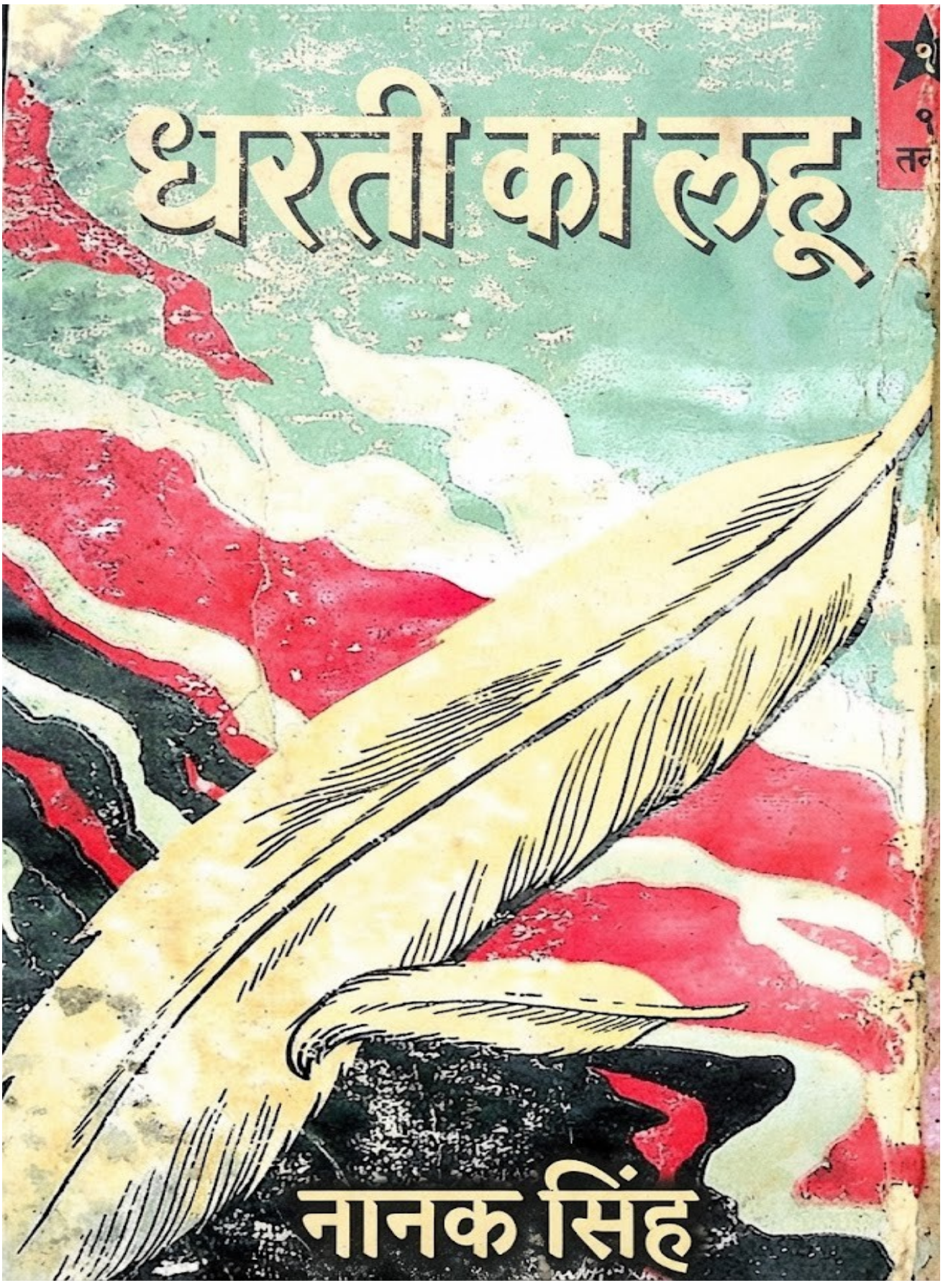

नानक सिंह

शाहकार पब्लिशर्स सीरीज़-१२४

धरती कालहू

नानक सिंह

प्रकाशक:

स्टार प्लीकेशान

2715; **दरिया गंज देहली**

कीमत एक रुपया

सिविल एजेंसियां:

पंजाबी पुस्तक भंडार

दरीबाँ कलां - दिल्ली

पृष्ठ 5

"कितने आश्चर्य की बात है चौधरी जी! आप ही फरमाइए। हर एक बहू-बेटी वाला है। गांव में इस तरह की बदफ़ैलियां (बुरे काम) होने लगीं तो किस तरह गुज़र होगी। इतनी उम्र गुज़र गई, कभी सुनी नहीं थी ऐसी ज़लालत (बेइज्जती) नई जवानी या इसी पर ही पड़ी है।"

पोठोहार (पश्चिमी पंजाब) की पहाड़ियों के दामन में बसा यह छोटा सा गांव अपनी खूबसूरती के लिए मशहूर है। अव्वल तो करीब दो चट्टानों के दरमियान खुले मैदान के छोर पर होने से, दूसरे उसके कदमों में छोटे से दरिया सोहन का चांदी जैसा साफ़-شفاف (पारदर्शी) पानी मुसलसल (लगातार) रवानी (प्रवाह) के साथ बहता है, जिसके दोनों साहिलों (किनारों) की चप्पा-चप्पा ज़मीन बे-दाग़ और नरम-ओ-नाज़ुक प्यारों की तारीख है।

सहाँ के नीले पानी में ज़रूर राँझे की बांसुरी जैसी कोई कशिश मौजूद है, जो प्यार भरे दिलों की गहराइयों में सिसकते ग़म-ए-फ़ुर्कत (विछोह का दुख) को ज्वार-भाटा में तब्दील कर देती है।

पृष्ठ 6

आजकल मौसम-ए-सरमा (सर्दियों का मौसम) होने की वजह से इस दरिया में पानी काफी उतरा हुआ है। फिर भी उसकी बदमस्त रवानी में कोई अजीब व-ग़रीब कशिश है, जो दरिया गुज़रने वालों का ख्याल जबरन अपनी तरफ खींच लेती है। उसके रेतीले साहिलों पर खड़े होकर देखने से दूर तक गेहूं के ताज़ा खेत और उनसे दूर मीलों तक पहाड़ियों के नज़ारे आंखों में ठंडक और दिल में जोश भर देते हैं।

रावलपिंडी की समत (दिशा) तला-गंग को जाने वाली सड़क पर ये गांव "चक्री" आबाद है। जिसके करीब दो बड़े स्टेशन हैं, एक ढट-ह्याल और दूसरा फतेह जंग।

दोपहर के वक्त जब आग बरसाता हुआ सूरज अपनी घनी किरणों से हर ठिठुरी हुई चीज़ को गरम कर रहा था और खेतों में गेहूं की बुआई का ज़ोर-शोर था। उस गांव के बीचों-बीच एक मकान के सहन (आंगन) में चंद मओज़्ज़ज़ (सम्मानित) लोगों की मजलिस लगी दिखाई दे रही थी।

गांव में ज़्यादा तादाद (संख्या) मुस्लिम नौजवानों की है। ये लोग खानदानी ज़मींदार होने की वजह से खुशहाल और पढ़े-लिखे हैं। इनके अलावा चंद मकान हिंदू और सिखों के भी हैं। इस गांव में उनका गुज़ारा भी अच्छा है और तिजारत (व्यापार) के अलावा उनमें से कोई भी ज़मींदारी नहीं करता है।

गांव का साहूकार, भाने शाह जिसे बाबा भाना के नाम से भी संबोधित किया जाता है। इस गांव में न सिर्फ खत्रियों (हिंदुओं) में ही मुखी (प्रमुख) है, बल्कि मुसलमानों में भी उसकी बड़ी इज़्ज़त है। उसी 'बाबे खाने' की हवेली में हम इस वक्त चंद खत्री और मुसलमान बुज़ुर्ग और नौजवानों को देख रहे हैं।

पृष्ठ 7

"मुसलमान, तादाद में सात आठ हैं , जो अपने खत्री साथियों से कुछ हट कर ही बैठते हैं। शायद हुक्के की वजह से, जिसमें 'गुड मिले तंबाकू का धूयाँ उठ उठकर छत की तरफ और वहाँ से पलट कर दरवाजे में से होकर कमरे में आ रहा था , खत्री बारी-बारी से कश लेते और साथ-साथ बातें करते हुए किसी का इंतजार कर रहे हैं।'

पेश्तर (पहले) बयान की गई गुफ्तगू इन मौजूद व्यक्तियों में हुई थी, जिसका जवाब में ज्यादा देर तक सिलसिला गुफ्तगू जारी रहा।

सत्तर साला 'बाबा खाना' इस गांव का एक मशहूर साहूकार है। अपनी बड़ी उम्र और लंबे तजुर्बे की वजह से वह साहूकार होने के अलावा गांव पंचायत का सदर (प्रधान), बेसहारा का सहारा, और देहाती ढंग का अत्तार (दवाई बेचने वाला), अर्जी-नवीस (पत्र लेखक) और भी बहुत कुछ है।

'बाबा खाना' की गांव में मकबूलियत (लोकप्रियता) की एक वजह और भी है। वह उर्दू, फारसी का अच्छा जानकार है, जिसकी वजह से गांव में जो भी लिखा-पढ़ी या किसी तरह के अर्जी का काम किसी पर आए, तो वह उन्हीं के हाथों पूरा होता है। आज के स्कूलों की तालीम (शिक्षा) के मुकाबले में, हालांकि बाबा खाने की यह फारसीदानी (फारसी का ज्ञान) कुछ अहमियत न रखती हो, लेकिन अपने दौर का वो आलिम ही समझा जाता है।

बाबे ने इसी गांव की मस्जिद में तालीम हासिल की थी। साथ ही अपने मौलवी से उसने 'तिब्ब-ए-अकबरी' और 'इलाज-उल-गुर्बा' वगैरह हिकमत (आयुर्वेद/यूनानी चिकित्सा) की किताबें भी पढ़ी थीं।

उर्दू, फारसी की उस दौर में सब ही अपनी जगह अहमियत थी और उसकी तालीम के कोर्स निहायत (बहुत) मुख्तसर (संक्षिप्त) होते थे। सिर्फ शेख सादी की दो किताबें 'गुलिस्तां' और 'बोस्तां' ही थीं। दूसरे

शब्दों में, ये कहना चाहिए कि तालीम 'गुलिस्तां' से शुरू होकर 'बोस्तां' पर खत्म होती थी। मस्जिद में तालीम पाने वाले हर तालिब-ए-इल्म को, ख्वा (चाहे) वह हिंदू हो या मुसलमान."

पृष्ठ 8

ये दोनों किताबें पढ़नी जरूरी थीं, लेकिन कुरान की तालीम सिर्फ मुसलमानों के बच्चों के लिए ही मुकर्रर (तय) थी।

आज सत्तर साल की उम्र में भी 'बाबे खाने' को अपने उस्ताद और उनकी दी हुई (तालीम) याद थी, और उनके गुफ्तगू में कोई भी मिसाल देनी होती तो वो अक्सर कहा करते, 'हमारे मौलवी साहब फरमाते थे...'

अपने मजहबी मामलात में बाबा कट्टर न होते हुए भी उनके पक्के यकीन रखता था। रात में सोने के वक्त, सुबह बेदार (जागने) होते वक्त, गुस्ल (स्नान) करते वक्त, या कहीं आते-जाते वो जरूर कुछ न कुछ कहना पड़ता था। चाहे वो किसी (धार्मिक) उसूल (सिद्धांत) या मकसद से मुताल्लिक (संबंधित) न हो। संस्कृत से कुछ श्लोक, 'ग्रंथ' वाणी से कुछ टूटे-फूटे शब्द और कदीम (प्राचीन) शायरों की कविताओं से अशआर (कविताएं)। ये सब मिला-जुला ही बाबे का पूजा-पाठ था। खास तौर पर इस तक तो वो अक्सर गुनगुनाता ही रहता था- 'श्री नमो भगवाते वासदेवा ---'।"

कई पुश्तों से वह इस गांव का बाशिंदा (निवासी) था, बाहरी दुनिया से हालांकि उसका कोई ताल्लुक न था। लेकिन तालीम याफ्ता होने और जाती तजुर्बात की वजह से उसे हर चीज़ की बहुत जानकारी हासिल थी। अपने तिजारती मामलात में भी वह निहायत सच्चाई और ईमानदारी का इस्तेमाल करता था।

गांव में कोई भी जलसा हो, चाहे किसी की शादी हो या तजहीज़-ओ-तक़फीन (अंतिम संस्कार)। सबसे पहले बाबे को बुलाया जाता। सिर्फ इसलिए नहीं कि गांव की सबसे ज्यादा मुअज्ज़ (सम्मानित) शख्सियत था, बल्कि इसलिए कि वह हर तरह के रस्म-ओ-रिवाजों से आशना (परिचित) था। चाहे हिंदुओं की हों या मुसलमानों की, सबके मुताल्लिक (संबंध में) उसे मुकम्मल (पूरी) वाकफियत हासिल थी। जब कभी गांव की कोई लड़की पालकी में सवार होने लगती, 'बाबा लाठी खटखटा कर।"

पृष्ठ 9

"फौरन वहां चला जाता और वास्कट की जेब में से एक रुपया निकाल कर लड़की की हथेली पर रख देता और उसके सिर पर हाथ फेरते हुए कहता-

'सुहाग सलामत रहे बेटी।' ठंडी हवा आए, यह मक़ूला (कहावत) नई शादीशुदा लड़कियों की सलामती के लिए आम तौर पर इस्तेमाल किया जाता है,

'हमें भूल न जाना ससुराल जाकर।' और आखिरी अल्फाज अदा करते ही उसके चेहरे की गंभीरता

में उदासी झलकने लगती। जब डोली उठने लगती तो उसके चारों बाजुओं में से एक बाजु बाबे का होता, जिस पर लोगों के मना करने पर भी, वह लाठी का सहारा लेकर गांव के बाहर तक ही पहुंचा कर छोड़ता। फिर डोली को जब कहार उठा लेते तो बाबा फौरन लाल या सुंदरी पोशाक पहने दूल्हे को जगा देता- 'सुन बच्चे! मेरी बात, बच्ची हमारी को फूलों से तौल कर रखना। यह हमारे गांव की लक्ष्मी है- लक्ष्मी...!'"

खत्रियों की आबादी इस गांव में मुसलमानों के मुकाबले में बहुत कम ही थी। फिर भी उनकी जिंदगी एक दूसरे से इस कदर जुड़ी हुई थी कि एक दूसरे के बगैर गुजर मुश्किल होता था।

बाबे खाने का मकान, जिस कदर वसी (विस्तृत) और गांव भर में ऊंचा है, उसी कदर उसमें रहने वालों की कमी नज़र आती थी। इसलिए बड़े से मकान में सिर्फ तीन जानें आबाद हैं- एक वो, उसका बेटा और बेटे की बीवी।

औलाद की सूरत बाबे को जिंदगी के आखिरी दिनों में देखने नसीब हुई थी। एक बेटा और एक बेटी, लेकिन नियति (किस्मत) को उसका यह शिकवा मंजूर न था और उन दोनों में से एक उससे ले लिया। बाकी रह गया उसका इकलौता बेटा बूटे शाह। बदकिस्मती से बूटे शाह भी इस खुदा-ए-नेमत से अभी तक, जबकि उसकी उम्र"

पृष्ठ 10

"तीस से ऊपर हो चुकी थी , वो पूरी तरह महरूम (वंचित) ही था।

कहा जाता है कि बेटे, बेटियों से ज्यादा अजीज (प्यारे) होते हैं, लेकिन बाबे की इकलौती बेटी 'कृष्णा' ने जिस दिन बाबे को 'दाग-ए-मुफारकत' (अलगाव का दुख) दिया, उसे सात बेटों का गम हुआ। यह बात गांव के लोगों की जुबान से अक्सर सुनी जाती है कि अगर कृष्णा की कमी को दूसरी लड़की पूरा न करती, तो शायद उस बूढ़े का तन्हा (अकेला) रहना मुश्किल ही नहीं, नामुमकिन हो जाता।

बाबे का नया मकान जो सारा ही गारे, पत्थर और देवदार की लकड़ियों का बना हुआ था, जिसे तामीर (निर्माण) किए पांच-छह साल ही हुए थे, जिस पर बूटे शाह ने खुले हाथों खर्च करके उसे दिलकश (आकर्षक) और खूबसूरत बनाने में कोई कसर नहीं उठा रखी थी।

इस नए मकान के पीछे बाबे का पुराना मकान भी मौजूद था, जो अपनी कम ऊंची छतों और पुराने ढंग के दरवाजों की वजह से बुजुर्गों के साये का अहसास कराता है। आजकल इस पुराने मकान में दो जानें आबाद हैं; एक अधेड़ बीवी और उसकी जवान बेटी।

गांव के साहूकारों की यह छोटी सी जमात उसी तरह और बातों के रस में डूबी, बाबे का इंतजार कर रही थी। फिर कभी जब उन्हें किसी आहट का खटका सुनाई न दिया, तो उनमें कुछ थकावट के आसार पैदा हो गए।

हुक्के की नाल दीने मनिहार की तरफ बढ़ा कर चौधरी फज़ल करीम ने अपनी मेंहदी लगी दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए कहा-

'भाई, बाबू जी ने तो बहुत देर लगा दी। मैं ने तो आज तहसील जाना था। साथ ही उधर बोआई करने वालों की तरफ भी चक्कर लगाना था।'"

पृष्ठ 11

"हुम्मा बढ़ई बोला, 'कोई बात नहीं चौधरी, तहसील कहीं नहीं भागी जा रही। ये रोज-रोज का झगड़ा खत्म करके ही जाना। इत्तफाक से आप भी मौजूद हैं। अगर काम को पूछो , तो मुझे आप सब से ज्यादा जल्दी है। बल्कि आंन्या की लड़की की शादी सर पर आ गई है और पलंग-पिढ़े के काम को अभी हाथ नहीं लगाया। सुबह खराद पर बैठा ही था और अभी पिढ़े की गुड्डियां भी सजी न थीं कि आप का पैगाम पहुंच गया।'

चौधरी ने भगते ब्राह्मण की तरफ देखा। 'जाओ भी, ओझा जी ।"अंदर से मालूम करो कि कितनी दूर तक गए हैं बाबू जी । बूटे शाह भी घर में नज़र नहीं आ रहा।'

भगता अपने साधारण चारखाने के पुराने कोट की लंबी आस्तीनों को कोहनी तक समेट कर झिझकता हुआ उठा ही था कि खुले कमरे से खटाक और 'श्री नमो भगवाते वासदेवा ' की आवाज सुन कार् अपनी जगह बैठ गया.

और सबकी आंखें दरवाजे पर जा लगीं."

पृष्ठ 12

"दाहिने बाजू को कमर पर टिकाए और बायीं हाथ में लंबी लाठी खटखटाते हुए बाबा कमरे में दाखिल हुआ और आते ही सबसे मुखातिब (संबोधित) हुआ।

'माफ करना, मुझे काफी वक्त लग गया , पर क्या किया जाए, जहां पर भी जाऊं, देरी लग ही जाती है।' कहते हुए वह चौधरी फज़ल करीम के करीब बैठ गया।

बाबे खाने का कद सामान्य आदमी जैसा लंबा होते हुए भी कमर झुक जाने पर कुछ ठिगना सा नज़र आता है। उसके सुर्ख चेहरे पर झुर्रियों जैसी नक्काशी, जवानी और बुढ़ापे का मेल मालूम होती है। अगर बड़ी दाढ़ी सफेद न होकर काली होती, तो बिना शक वह किसी नौजवान से कम दिखाई न देता।

खद्दर की मामूली कमीज पर दसूती की बारीक धारियों की पतूही और ऊपर मटमैले रंग की कश्मीरी टोपी पहने हुए बाबा एक प्रभावशाली व्यक्तित्व का मालिक है। उसके नीचे सफेद खद्दर की लंगदार धोती है और हाथ में पकड़ी हुई लाठी का."

पृष्ठ 13

"निशान जमीन पर घिसकर दातुन जैसा हो गया है। मूठ पर उंगलियों की रगड़ के छोटे-छोटे गड्ढे पड़ गए हैं। उस से सर के कपास जैसे सफेद निशफत (आधी) तराशे हुए चंद बाल पगड़ी के नीचे गर्दन के करीब से तरतीब से निकले हुए निहायत खुशगवार नज़र आ रहे हैं।

'बाबू जी !' शिकायत अमेज (भरी) लहजे के साथ गुलाब सिंह ने कहा। 'आज तो आप की राह देखते-देखते बूढ़े हो गए। कहां की बेगार आन पड़ी थी?'

तभी पीछे की दीवार के साथ लाठी टिकाता हुआ बाबा अपनी जगह पर बैठ चुका था। दाहिने हाथ से अपनी घनी मूंछों को हटाता हुआ बोला,

'बेगार कैसी भाई साहिब! सगरा कई दिनों से बीमार है, उसी को देखने चला गया था।'

और बात का रुख बदलते हुए बाबा चौधरी की तरफ देखते हुए बोला, 'आज कैसे कदम आए गरीब खाने में? खैरियत तो है?'

'खैरियत कैसी बाबू जी !' चौधरी फज़ल करीम बोला। 'अब तो सच पूछो कोई मज़ा नहीं रह गया इस गांव में रहने का।'

बाबे के चेहरे पर फिक्र (चिंता) के निशान झलके आए। उस का सर थोड़ा सा झुका और बात का मतलब समझने के लिए वो चौधरी से सवाल करने ही वाला था कि उस से पेश्तर (पहले) ब्राह्मण अपनी ठोढ़ी को उंगलियों से सहलाते हुए बोल उठा,

'इतना अंधेरा तो बाबू जी सुना नहीं था। इतनी बड़ी उम्र हो गई है, जवानी भी देखी है... लेकिन ऐसा जुल्म, न बेटी का लिहाज, न बहन की शर्म।'

'लेकिन किस बात कह रहे हैं पंडित जी आप?' बाबे ने और ज्यादा बेताब (व्याकुल) होकर सवाल किया."

पृष्ठ 14

"बात उसी लंगड़े मिस्त्री के बेटे यूसुफ की है, जो अपने खानदान के माथे पर एक बदनुमा दाग है।

मीर बख्श भट्टी बोला, 'किसी ने सच कहा है, सपूत के कपूत और कपूत के सपूत। बाप ने कभी आंख उठाकर किसी की तरफ देखा नहीं और बेटे की करतूतें देखो, जिस थाली में खाना, उसी में सुराख करना।'

'यहां पर बात यह हुई है।' हीरा सिंह को छेड़ते हुए अपनी ढीली पगड़ी संवारते हुए कहा, 'कहते हैं एक करेला , दूसरे नीम चढ़ा। ऊपर से लग गई है सिपाहीपन की धमक, ऐसा भी क्या कहना। सच तो यह है बाबू जी ! आप का लिहाज मारा हुआ है, क्योंकि आप के बूटे शाह का पगड़ी बदल दोस्त बना हुआ है, अगर कोई और होता तो...'"

बोलते-बोलते वह नौजवान ज्यादा जोश में आ गया और उस डर से कि कोई नाजायज लफ्ज जुबान से न निकल जाए, खामोश हो गया।

आखिर में चौधरी फज़ल करीम ने उस से मुताल्लिक (संबंधित) जो कुछ वह जानता था, तफसील (विस्तार) से बाबे के रूबरू (सामने) बयान कर दिया।

सुनते ही बाबे का चेहरा तपत्ते हुए तांबे जैसा हो गया। अव्वल तो वो गांव में हर बहू-बेटी की इज्जत आबरू अपनी समझता था। दूसरे इस मामले में जिस लड़की का नाम लिया गया, वो नाम बंदूक की गोली बनकर उसके सीने को भेदता हुआ चला गया। उसके बुढ़ापे में जवानी का सा जोश पैदा हो गया। और उसकी आंखें रूहानी दर्द से शंकर की तीसरी आंख की तरह उबलने लगीं। कनपटी सेव माथे तक उसकी नसें फूल गईं । सब्र के साथ सब की तरफ देख कर बोला।"

पृष्ठ 15

"किसी ने आंखों से देखा भी है या सिर्फ सुनी सुनाई बातें रहे हैं?'

'सुनी सुनाई ----!' खद्दर की मोटी चादर में से बांह निकालकर हुक्के की नाल पकड़ते हुए नियाज खट्टर बोला, 'ये सामने बैठा है खुद देखने वाला। पूछ लीजिए दीन-ओ-ईमान की कसम खाकर।' उसने नीचे बैठते हुए अल्लाह दत्ते की तरफ देखा।

'अल्लाह दत्ते!' बाबे की संजीदा (गंभीर) आवाज में कुछ जुर्रत (साहस) भी शामिल थी। 'मुसलमान है...?'

'शुक्र अलहम्दुलिल्लाह।' अल्लाह दत्ते ने मजहबी जोश में आकर कहा।

'पढ़ कलमा।' बाबे की नजर और आवाज में हुक्माना रूब (दबदबा) था।

दोनों हाथ एक दूसरे के साथ जोड़कर और उन्हें सीने के आगे फैलाते हुए अल्लाह दत्ते ने पढ़ना शुरू किया... 'ला इलाहा इल्लल्लाह मुहम्मदुर रसूलुल्लाह।'

'जो कुछ आंखों से देखा है उसे अपने खुदा को हाजिर-ओ-नाजर जानकर सच बताना।' बाबे ने धमकी भरे अंदाज में कहा।

'बाबू जी !' अल्लाह दत्ते ने नजरें उठाईं, 'मैं सात दोजख की आग में जलूं अगर आप के रूबरू कुफ्र बोलूं।' उसने तफसील (विस्तार) बयान करना शुरू किया।

'गुजिश्ता (पिछली) जुमेरात को मैं अपने ननिहाल को गया हुआ था। मेरे मामू के लड़के की तबीयत खराब थी। आज सुबह मुंह अंधेरे मैं वहां से रवाना हुआ तो दिन चढ़ते-चढ़ते गांव पहुंच गया। जब बाबू जी आप के कुएं के करीब से गुजरा तो नीचे में से कुछ शोर सुनाई दिया। मैंने सोचा कि शायद

पृष्ठ 16

आप का मुजारा ईदा माली अपने भतीजे से लड़ रहा होगा। हर रोज जो चाचे भतीजे में जूतम पैजार होती रहती है। मैंने सोचा कि मुमकिन है किसी को चोट वगैरह लग जाए, तो अपना रस्ता छोड़ कर बगीचे में घुस गया।'"

"आवाज छपरी (छावनी या आंगन) में से आ रही थी। जैसे ही मैंने अंदर झांका, अल्लाह गवाह है, देखते ही मेरे दिल में आग भड़क उठी। यूसुफ ने नसीम को बाजुओं में जकड़ रखा था। और वो बेचारी बुलंद आवाज में गालियां निकाल रही थी और नाखूनों और दांतों से उसके कपड़े फाड़ रही थी। मेरे देखते ही देखते नसीम ने दो-तीन थप्पड़ भी उसे रसीद (जड़) किए और इतनी जोर से काटा कि उसका बाजू लहूलुहान हो गया...'"

"और...?" बाबे ने तेजी से सांस लेते हुए पूछा। अल्लाह दत्ते ने लम्हा (पल) रुककर फिर बताना शुरू किया।

'"मुझे देखते ही यूसुफ ने नसीम को छोड़ दिया। और नसीम देखते ही बाहर निकल कर गांव की तरफ भाग गई। अब वह कमीना (यूसुफ) लगा मुझसे झगड़ने। मुझसे कुरान की कसम उठवाइए। मैंने तो सिर्फ यही कहा था कि क्यों रे यूसुफ, यह क्या है? शर्म तो नहीं आती तुझे एक जवान लड़की से हाथापाई करते हुए?'

आगे वह छूटते ही कहने लगा, 'जा भाग यहां से, वरना तुझे फ़ोड़ दूंगा।' आप जानते हैं बाबू जी ! हर कोई मुट्ठी भर अनाज खाता है। मेरे जिस्म में भी चार कतरे (बूंद) खून के थे। इस कदर बे-गैरती तो नहीं है कि आंखों के आगे लड़की की बे-हुरमती (बेइज्जती) देख कर उसकी गिदड़-धमकियां बर्दाश्त कर लेता।"

कमीज की आस्तीन चढ़ाकर मैं बोला, 'आ बेटे! तुझे चखाऊं मजा... लेकिन चोर के पांव कहां...'"

पृष्ठ 17

"जब दो-तीन घूँसे ठोड़ी पर खाए तो लगा घिघियाने लगा- कहने लगा, 'अल्लाह दत्ते! खुदा के वास्ते मेरी करनी पर पर्दा डाल दे, तो मेरा भाई जो ठहरा।'

मुझ पर तो क़हर सवार था। मैं ने कहा, 'ठहर जा, तेरे भाई की ऐसी की तैसी।'

गर्दन से पकड़ कर जो झटका तो मुँह के बल गिरा और लगा दांत निपिरोने --कहने लगा जैसे भी हो मेरी इज्ज़त बचा ले।

मैं ने कहा, 'अरे हरामी! गांव की बेटी से तेरी इज्ज़त कहीं बहुत बड़ी है? शायद तू ये समझता है कि लड़की का बाप सर पर नहीं है और टेवरे जी में आए चमड़े के सिक्के चलाएगा। उस की आँखें न निकाल लें जो हमारे गांव की बेटी पर आँख उठाकर भी देखे। बस फिर क्या हुआ- यूसुफ की माँ मर जाए जो फिर कसमसाया हो।'

'कौन कहता है- लड़की के सिर पर बाप नहीं है? जब तक इस बूढ़े के जिस्म में जान है, इसे कोई यतीम (अनाथ) नहीं कह सकता।' बाबे ने कड़क कर कहा।"

" 'सच्ची बात है-' चौधरी फज़ल करीम बोला। 'बाप से भी बढ़कर दिखा दिया है आप ने बाबू जी ! अगर आप का स्थान दोनों के सिर पर न होता तो ये दोनों बेचारी न मालूम कहां भटकतीं। सच्ची बात है, आप ने इस कुनबे की जड़ें पाताल तक लगा दी हैं। बाप की जगह पर हैं बाबू जी । बात सुनते शर्म महसूस होती है। इस लफ़ंगे यूसुफ की क्या मजाल थी जो इस कदर दलेरी (साहस) दिखाना... ये जो कुछ उसने किया, मेरे ख्याल में किसी दूसरे की हिम्मत पर किया है।'

'दूसरे की हिम्मत पर...!' बाबे की अंगारे की तरह दहकती हुई आँखें गर्म हो उठें।

पृष्ठ 18

'वह कौन है इस तरह की शह देने वाला?

ये बात अब आप रहने ही दीजिए बाबू जी ।' चौधरी ने हिचकिचाते हुए कहा। लेकिन बाबे के लिए इंतज़ार और भी ज्यादा गुस्सा बढ़ा देने वाला था। वह बोला, 'चौधरी! पंच नेक लोग (भलमानुस) की सूरत होते हैं। इन के रूबरू कोई भी बात, या पर्दा नहीं रखना चाहिए। बगैर किसी तरह की झिझक के उसका नाम लें...'"

" 'बाबू जी !' चौधरी बोला, 'किस तरह ज़बान खोल कर आप के सामने ये बात बयान करूँ। सच पूछिए तो मेरा दिल भी गवाही नहीं देता कि ये बात सच होगी। लेकिन सबूत कुछ और ही कहते हैं।'

'नहीं नहीं...' बाबे की आवाज़ में हुक्माना (आदेशात्मक) तलखी थी। 'तरफ़दारी का पंचायत में कोई काम नहीं। इस तरह गांव में बदफ़ैलियां होने लगें तो लाख लानतें हैं हमारी और तुम्हारी ज़िंदगी पर,

चाहे मेरा सगा बेटा ही क्यों न हो। मैं ऐसे गुंडे को कभी माफ़ नहीं कर सकता... हाँ, कौन था वो, जिस की शह पाकर यूसुफ ने इस तरह की हरकत की?'

चौधरी ने आजिज़ी (विनम्रता) से कहा, 'अगर असल में आप के बेटे की ही ये बात हो तो...?'

'फिर...' बाबे के होंठ लरज़े। 'फिर मैं इसी वक़्त, उस जैसे कपूत को घर से निकाल...' बोलते-बोलते बाबे की आवाज़ इस कदर बंद हो गई कि वो खाँसने लगा, जिस की वजह से वो अपनी बात मुकम्मल (पूरी) न कर सका।

'मुझे माफ़ कर बाबू जी ...' चौधरी ने रुक-रुक कर कहा।

पृष्ठ 19

'सुबह बूटे शाह ले कर गया था नसीम को उस बगीचे में । इतनी बात तो खुद ने भी देखी है अपनी आँखों से...।'

'हूँ...'

'हाँ...'

'बूटा उसके साथ गया था?'

'जी...'

बाबे की गोया (मानो) ज़बान किसी ने खींच ली हो, अब न उस में बोलने की ताकत थी और न ही किसी की तरफ नज़र भर कर देखने की सकत (क्षमता)। उस की निगाहें झुकी हुई थीं और उन में किस तरह के प्रभाव नृत्य कर रहे थे कि कोई देख न सका। सिर्फ उस के जिस्म की लरज़िश (कांपना) सब को नज़र आ रही थी।

काफी देर तक दम घुटने वाली ख़ामोशी छाई रही।

थोड़ी देर बाद बाबे ने सिर उठाया, आँखों में रवानी पैदा की और खुले दरवाज़े में जिस से वो दाख़िल (प्रवेश) हुआ था, उस के एक कोने में रखी हुई लाठी उठाते हुए बुलंद आवाज़ में कड़क कर बोला- 'बूटिया... अरे... ओ बूटे!'

उस के जवाब में अंदर से आवाज़ आई- 'आ रहा हूँ बाबू जी ...'"

पृष्ठ 20

"तभी बूटे शाह सामने आया, बाबू जी से आँखें न मिला सका और लाठी का एक भरपूर वार उसने बूटे शाह की पीठ पर कर दिया, जिससे उसका जिस्म कमान की तरह झुक गया और वह लड़खड़ाकर चौधरी फज़ल करीम के करीब आ गिरा।

'इस कदर सख्ती मुनासिब नहीं बाबू जी !' बूटे शाह की पीठ सहलाते हुए चौधरी बोल उठा।

'सख्ती न करूं...?' सिर को इधर-उधर हिलाते हुए बाबा चौधरी, आप कहते हैं मैं सख्ती न करूं। उसने मुझे कहाँ बैठने के काबिल छोड़ा है। इतनी उम्र गुजर गई उसकी, उसने बताया तक नहीं कि उसके मुँह में कितने दांत हैं। जहाँ कहीं जिक्र होता, मैं कहा करता कि मेरे बेटे जैसा हर एक के घर हो। किसी को कभी मालूम न होता कि ये रात कब आता है और सवेरे कब जाता है।'"

पृष्ठ 21

"और फिर बेटे की तरफ देखकर गुर्राया, 'न होता तो बेहतर था। अगर मुझे इन बातों का पता होता तो मैं तुझे पैदा होते ही क्यों न जहर दे देता, बे-गैरत। अगर भला चाहता है तो इसी वक्त घर से निकल जा, वरना मेरे लिए तोल भर संखिया ला कर ... दे दे।'

बूटे शाह का हलक खुश्क हो रहा था। उसने कहने की कोशिश की, लेकिन उसके हलक से कोई आवाज न निकल सकी। आखिर सारी ताक़त लगा कर पीछे की ओर हट कर लड़खड़ाती आवाज में बोला, 'बाबू जी ! मेरी नियत में कोई बुराई न थी।'

'तेरी नियत में कोई बुराई न थी।' बाबे ने मुँह चढ़ाते हुए कहना शुरू किया, 'तेरी नियत में कैसे बुराई हो सकती थी, तेरा पीर तो वो था जिस की जियारत कराने के लिए उस लड़की को ले गया था, साथ चोर भी, साथ चतुर भी ...।' बोलते-बोलते बाबे के होंठों पर एक मामूली सी झिझक आ गई।

'बोल क्यों ले गया था उसे...?' बेटे की खामोशी पर और ज्यादा खफा होते हुए उसने पूछा।

लेकिन फिर भी बूटे शाह खामोश रहा।

एक मर्तबा फिर चौधरी के हाथ से लाठी छीनने की कोशिश करते हुए वह बोला, 'सांप सूंघ गया है क्या, मैं क्या पूछ रहा हूँ तुझसे?'

' बाबा जी!' अपने खुश्क होंठों पर जुबान फेरते हुए वहीं जूतियों में खड़े-खड़े बोला। 'सब कुछ बताए देता हूँ बाबा जी। सब कुछ सुन कर बी आप मुझे कसूरवार समझे तो तो मैं आप के सामने मुँह काला करके और गधे पर सवार होकर गांव से निकल जाऊँगा।'"

पृष्ठ 22

"'नहीं नहीं, बरखुरदार, ऐसा न कहो।' कहते हुए चौधरी ने उठकर उसे जूतों वाली जगह से खींचकर करीब लाने की कोशिश की।

लेकिन वह कहते हुए वहीं खड़ा रहा- 'नहीं चाचाजान, जब तक बाबू जी न कहेंगे मैं यहीं खड़ा रहूँगा।'

'बैठ जा।' एक कड़कती आवाज उसे अपने वालिद के लरज़ते होंठों से सुनाई दी। बूटे शाह वहां से हटकर चौधरी के घुटने के करीब आ बैठा।

वह अभी बैठने ही पाया था कि बाबे का हाथ फिर अपनी लाठी पर जा टिका, जिसे देखते ही चौधरी ने उसका बाजू थाम लिया। 'बस बस बाबू जी ! पहले आप का लिहाज किया था, अब मत लाठी पकड़ो।'

'नहीं नहीं, मैं कुछ न कहूँगा।' कहते हुए बाबा उसी मुकाम से उठा और धीरे-धीरे रास्ते से अंदर चला गया।

अंदर से जब वह लौटा तो सबने उसके हाथ में रस्सी से बंधी हुई एक पीतल की गड़वी देखी, जिस का मुँह टिन के टुकड़े और लाख से बंद किया हुआ था। देखने वालों में मुसलमान भले ही उसकी अहमियत को न समझ पाए हों, लेकिन हिंदू-सिखों को उसे समझने में देर न हुई।

आते ही बाबू जी ने वह गड़वी अपने बेटे के सामने रखते हुए उसी तरह तिरछी नजर से पूछा, 'बता ये क्या है?'

'गंगाजली है बाबू जी !'"

पृष्ठ 23

"उसी गंगाजली की कसम खाकर कि सब सच बताएगा।"

"गंगाजली की कसम खाता हूँ, सब सच कहूँगा।" इसके बाद बूटे शाह ने शुरू से आखिर तक सारा वाकया बयान कर दिया, जिसे खत्म होते-होते सुनने वाले इतने प्रभावित हुए कि गोया उनके सामने बूटे शाह की जगह कोई फरिश्ता बोल रहा है।

चौधरी फज़ल करीम बार-बार कह रहा था, "मुझे तो पहले से ही इसका यकीन न हो रहा था। हमारे हाथों में ही तो खेल कर होश संभाला है। क्या आदमी की शिनाख्त (पहचान) की इतनी भी अक्ल नहीं है।"

अपने बयान के आखिर में बूटे शाह ने यह और कह दिया: "आप सब लोग बाबू जी के बराबर में और फिर पंच लोगों की सूरत होते हैं। मैंने गंगाजली को हाजिर-ओ-नाजर मानकर सब कुछ सच बयान कर दिया है। लेकिन फिर भी अगर आप लोगों को या बाबू जी को मेरी किसी बात में फरेब (धोखा) नजर आता हो, तो आप लोगों के जूते और मेरा सिर।" बूटे शाह का बयान सुनने के बाद किसी के पास कहने-सुनने के लिए कुछ नहीं रह गया था। थोड़ी देर बाद महफिल बर्खास्त हो गई।

पृष्ठ 24

दो मुख्तलिफ (अलग) कौमों के घरानों में इस कदर गहरी दोस्ती, जो धीरे-धीरे करीबी रिश्तेदारी में तब्दील हो गई, आज इसे अजीब और गरीब या नामुनासिब तसव्वुर किया जाए, लेकिन उन दिनों में यह न तो अजीब बात थी और न नामुमकिन।

पंजाब का यह इलाका जिसे पोठोहार कहा जाता है, इसके हर एक गाँव शहर में इस तरह की बेशुमार मिसालें आज से चंद साल पेश्तर (पहले) अक्सर हर जगह मिल जाती थीं। ऐसी ही थी कहरी गाँव के लोगों की कुनबा-परस्ती।

दोनों घराने एक-दूसरे के पड़ोसी थे। रहीम बख्श का घराना और बाबा भाना मल का घराना। दोनों के दो-दो बच्चे थे, एक-एक लड़का और एक-एक लड़की। रहीम बख्श जब तक जिंदा रहा, बाबा भाना मल को अपना बड़ा भाई मानता रहा। मर्दों की निस्बत औरतों में बेपनाह मोहब्बत थी। खास तौर पर दोनों लड़कियां नसीम और कृष्ना बचपन से ही एक, दूसरी को सगी बहनें मानती थीं , दोनों हम-उम्र सहेलियां थीं।

पृष्ठ 25

इसी दौरान मौत का एक ही साल में दोनों घरों पर साया पड़ा। उधर रहीम बख्श की जिंदगी का चिराग गुल हुआ। उधर कृष्ना उजड़ गई। बदकिस्मती जो कराये वो थोड़ा , एक घर का साया हटा तो दूसरे घर की चहचहाने वाली चिड़िया उड़ गई। लेकिन बदकिस्मती को खुश-नसीबी ने शिकस्त दी। कृष्ना की कमी की कसर को नसीमा ने पूरा किया और रहीम बख्श की कमी को बाबा भाना ने।

यूं तो बेवा हो जाने पर सुघरा का कोई सहारा न रह गया था। लेकिन जैसे ही एक मोहब्बत भरा हाथ आगे बढ़ा, कि सुघरा की तमाम फिक्र खत्म हो गई।

रहीम बख्श के जनाजे उठने से पेश्तर ही बाबा भाना ने कह दिया था,

"क्यों रो-रो कर आँखें गंवा रही हो सुघरा! अपने भाई को वापस लाऊं , नामुमकिन है, लेकिन इस बात का यकीन दिलाता हूँ कि मेरे जीते जी तुझे किसी बात की कमी न रहेगी और बूटा अगर अपने बाप का बेटा है तो अज़ीज़ और नसीमा को सगे भाई-बहन से कम न समझेगा।"

नसीम को हर कोई सीमा नाम से पुकारा करता था। सारा गाँव इस बात का गवाह है कि बाबा भाना ने जब बात एक दफा जुबान से निकाली, उसकी तकमील में उसने कभी कोताही नहीं की। खास तौर पर जब से कृष्ना वक्त से पहले इस जहान-ए-फानी से रुखसत हुई है, उस वक्त से तो उसे लोग नसीम को ही कृष्ना मानने लगे हैं। शायद इसलिए कि दोनों सहेलियों की उम्र बराबर थी और दोनों के दरमियान रंग-रूप और आदतों में बहुत समानता थी।

पृष्ठ 26

"उसके बाद सुघरा के लड़के अज़ीज़ को जब दूर के एक रिश्तेदार ने रावलपिंडी से जाकर मुलाज़मत (नौकरी) दिला दी तो सुघरा और नसीम से इस खानदान की जिम्मेदारियों में और इजाफा हो गया। दरअसल उसी वजह से बाबा भाना उन दोनों माँ-बेटी को उनके खस्ता (जर्जर) झोंपड़े से अपने पुराने मकान में ले आया। इसलिए कि जिस घर में सुघरा रहती थी वो गाँव से बाहर की तरफ था और वहां चोरी वगैरह का भी खतरा बना रहता था।

अज़ीज़ नसीम से तीन साल बड़ा है । दोनों भाई-बहन बूटे शाह को भाई जान और बाबा भाना को बाबू जी कहकर पुकारते हैं।

जब से अज़ीज़ ने रावलपिंडी में किसी साहब के यहाँ मुलाज़मत की है, तब से बूटे शाह को इन दोनों माँ-बेटियों की तरफ खास तवज्जो (ध्यान) देनी पड़ रही है। घर के राशन से लेकर गाय के चारे तक की तमाम जिम्मेदारियां उसने खुद पर ले ली हैं।

दिन में एक-दो मर्तबा वो जरूरी उनके घर जाता और खैरियत मालूम करना समझता था।

नसीम से मिलकर बूटे शाह को न सिर्फ अपनी मरहूम (मृत) बहन का प्यार मिलता है बल्कि बच्चों को प्यार करके पालने की भूख भी मिलती है। वजह ये है कि उसकी शादी हुए सालों गुजर चुके हैं लेकिन भकवान ने उसे औलाद का मुँह नहीं दिखाया।

गुज़श्ता (पिछले) साल अज़ीज़ की सगाई करीब के एक गाँव में हो चुकी है। शादी कब होगी यह अभी तक तय नहीं हुया। बाबू जी की ख्वाहिश है कि अज़ीज़ से पहले नसीम की शादी हो जाए। वह अक्सर

कहा करता है। लड़के की क्या फिक्र है उसकी शादी तो हो ही जाएगी। लेकिन अपनी जिंदगी में नसीम के हाथ पीले कर पाऊं यही फिक्र मुझे किसी करवट चैन नहीं लेने देती।"

पृष्ठ 27

"अपनी तरफ से उसने कोशिशों में कमी नहीं की, लेकिन उसे अभी तक अपनी पसंद का लड़का न मिल पाया। नसीम का अठारहवां साल लग चुका है। लेकिन वह अपनी तालीमयाफ्ता (शिक्षित) और हर काम में होशियार धर्म की बेटी को किसी गँवार के गले कैसे बांध दे!

दोनों भाई बहनों जब तालीम गाँव के प्राइमरी स्कूल में हासिल की थी। उससे कहीं ज्यादा उन्होंने बाबू जी से हासिल की थी। इस लिहाज से बाबू जी न सिर्फ उनके धर्म के बाप थे बल्कि उस्ताद भी थे।"

पृष्ठ 28

"और उस वाकये या हादसे का पसमंज़र (पृष्ठभूमि)--?

शाम हो रही थी। गाय के लिए सानी तैयार करके नसीम उसे धोने (दूध निकालने) की तैयारी कर रही थी। कोहनी तक आस्तीन चढ़ी होने की वजह से उसकी गोरी और नरम-ओ-नाज़ुक कलाइयों पर अभी तक भूसे के नन्हे-नन्हे तिनके चिपके हुए थे। उसी वक्त उसे सुनाई दिया।

'अरे पगली! इतनी सर्दी में बाहर क्या कर रही है?' और दूसरे ही लम्हे में बूटे शाह उसके सामने मौजूद था।

झट से उसने दुपट्टा उठाकर ओढ़ लिया और जवाब दिया। 'गाय धोने लगी थी भाई जान! चलिए अंदर चलिए, मैं अभी आती हूँ।'

'यह काम बाद में हो जाएगा।' बूटे शाह बे-चैन अंदाज़ में बोला। 'पहले चल मेरी दो-चार बातें सुन ले।'

दोनों आमने-सामने बैठ गए। नसीम पूछने का इरादा कर रही थी कि कौन सा..."

पृष्ठ 29

"ज़रूरी काम है।" लेकिन उसके लहजे से बूटे शाह बोल पड़ा।

"नसीम! अच्छा ही हुआ कि आज चाचीजी घर पर नहीं हैं, आज मैं तन्हाई में तेरे साथ कुछ बातें करनी चाहता हूँ।"

नसीम ने कुछ ताज्जुब से उसकी तरफ देखा। लेकिन उस ताज्जुब में किसी तरह की झिझक या बे-एतबारी न थी।

"तन्हाई में...?" उसने पूछा।

"हाँ..." बूटे शाह ठीक तरह बैठते हुए बोला, "लेकिन इससे पहले मेरी एक बात मान ले भाई जान!"

नसीम ने अपनेपन से कहा। "क्या...?"

"मैं गाय के दूध दुह कर लाती हूँ। एक गिलास ताज़ा दूध पी लीजिए।"

"कच्चा दूध तो मैंने कभी पिया नहीं। तुझे पता है नसीम! बादी करती है मुझे..."

"बादी न बादी..." नसीम ने ज़िद भरे अंदाज़ में कहा, "कभी ताज़ा दूध भी बादी करता है? थोड़ी देर में अभी तो करके आई हूँ।"

"पगली बैठ जा... तुझे तो बहुत सी बातें करनी हैं।" चाची के आने से पहले।

नसीम का जोश कुछ सर्द पड़ गया। एक मर्तबा फिर उसने अपनी बात मनवाने के लिए कुछ कहना चाहा। लेकिन बूटे शाह की मर्जी देखकर उसने कुछ न कहा।

"बताइए...!"

"अच्छी तरह ऊपर बैठकर बैठ...!"

पृष्ठ 30

वह टांगें समेटकर खाट पर ठीक तरह बैठ गई।

"जी हाँ..."

"जी..."

"अज़ीज़ से तेरा क्या रिश्ता है?"

"ये क्यों पूछ रहे हैं भाई जान?"

"किसी के लिए पूछूँ, तो बस!"

"जो रिश्ता मेरा आपसे है।"

"वाकई तो मुझे अज़ीज़ की तरह भाई समझती है...?"

"अज़ीज़ से भी ज्यादा भाई जान। आप बड़े हैं और वह छोटा है।"

"तो नसीम ये बता। बड़े भाई को ये हक है कि वह छोटी बहन से जो दिल चाहे पूछे...?"

"हाँ भाई जान।"

"तो जो कुछ मैं पूछूँगा उसका जवाब सही-सही देगी।"

"क्यों नहीं दूँगी?"

"नसीम तुझे मालूम है तेरी उम्र क्या है?"

"अठारह साल..." नसीम ने कुछ हिचकिचाते हुए जवाब दिया।

"तो क्या हमें तेरी शादी के मुताल्लिक सोचना नहीं चाहिए?"

सुनकर नसीम के चारों तरफ शर्म की दीवार खड़ी हो गई। उसके गोरे चेहरे पर सुर्खी फैल गई। शर्म की लहर उसके सिर से पाँव तक दौड़ गई। निगाहें झुक गईं। उसने कोई जवाब न दिया।

"तूने वादा नहीं किया नसीम कि जो कुछ मैं सवाल करूँ तो उसका सही जवाब देगी?"

पृष्ठ 31

नसीम के चारों तरफ खड़ी हुई शर्म की दीवार आहिस्ता-आहिस्ता नीचे होने लगी। उसकी पलकें ऊपर उठीं लेकिन जुबान उसी तरह खामोश रही।

"अच्छा मैं तुझे मजबूर न करूँ नसीम!" खाट से उठते हुए बूटे शाह ने कहा, "तुम बताना नहीं चाहती हो।"

लपककर उसने उसका बाजू पकड़ लिया और दोबारा उसी जगह बैठाते हुए बोली, "नाराज़ हो गए भाई जान! आप तो मेरे सिर की कसम खा गए। अच्छा बताती हूँ, पूछिए।"

"तो बता..."

"क्या...?"

"यही जो कुछ मैंने पूछा।"

"इन बातों से मेरा ताल्लुक भाई जान। आप जानें, आपका काम।"

"तेरा ताल्लुक इन बातों से न होता तो क्या मेरा सिर फिर गया था जो तुमसे पूछने बैठ गया।"

"आप क्या पूछना चाहते हैं...?"

गोया बूटे शाह ने मौज़ू (विषय) ही तब्दील कर दिया, "मैं आज तुझसे कुछ माँगने आया हूँ।"

"मेरे पास आपको देने के लिए ही क्या है भाई जान, जो कुछ भी है वह खुदा का है और आपका है।"
"फिर माँग लूँ जो दिल में आए..."

"माँगें नहीं, ले लीजिए अपनी चीज़ जो आप लेना चाहते हैं।"

पृष्ठ 32

"'ये क्या है नसीम?' बाहर आँगन में लगे हुए आम के एक छोटे से दरख्त की तरफ, जो हवा में झूम रहा था, इशारा करके बूटे शाह ने पूछा।

नसीम ने आँगन की तरफ देखते हुए पूछा, 'क्या?'

'ये आम का पेड़ किसने लगाया था?'

'मैंने ही लगाया था भाई जान।'

'क्यों?' नसीम उठ खड़ी हुई। गोया उसके एक लफ्ज ने सवाल ने उसके दिल में तीर लगा दिया हो, गोया उसकी चोरी पकड़ी गई, जिसे वह गुजश्ता कई सालों से अपने दिल के कई पर्दों में छिपाए हुए थी। इस दफा फिर उसके चेहरे की सफेदी में तब्दीली हो गई। माज़ी (अतीत) की यादों का एक लंबा सिलसिला उसकी निगाहों के सामने गुजरने लगा। एक मर्तबा फिर उस पर पसीने की तारी हो गई। दिल के बंद दरवाजों की दरारों में से उसे कोई जहमत हुआ नजर आने लगा जो आहिस्ता-आहिस्ता उसके सामने साफ जाहिर हो गया। वह उस वक्त अपने बचपन की चंद झांकियां देख रही थी।"

पृष्ठ 33

"'नसीम!...' गोया किसी ने उसे नींद से बेदार कर दिया हो। 'अरे तू कहाँ खो गई है?'

'नहीं तो भाई जान!' ख्वाब-आलूदा सी आँखों को मलमचाते हुए वह बोली, 'सुन तो रही हूँ भाई जान।'

'खाक सुन रही है...' बूटे शाह खुश्क लहजे में बोला, 'अगर बताना नहीं चाहती है तो रहने दे।' कहते-कहते वह फिर उठ खड़ा हुआ।

नसीम ने उसे झिड़काते हुए कहा, 'कह तो दिया है भाई जान। आप जो भी पूछेंगे मैं उसका जवाब दूँगी।'

'तो मैंने क्या पूछा है, क्या पूछा है आपने?'

'अरे! वही तो...' उसी तरह आम के दरख्त की तरफ इशारा करते हुए उसने पूछा, 'उस आम के बारे में।'"

पृष्ठ 34

"और नसीम जब फिर भी खामोश रही तो बूटे शाह ने बात का तूल देना मुनासिब न समझा और उसने बात का रुख बदल दिया।

'क्या तू जानती है कि यूसुफ मेरा पगड़ी बदल दोस्त है?'

'काफी अरसे से जानती हूँ भाई जान।'

'तो उसी बे-तकलुफ दोस्त के लिए मैं एक चीज़ मांगने आया हूँ, नसीम!'

'क्या, भाई जान?'

'माफी।' जवाब में नसीम खामोश रही। थोड़ी देर रुककर बूटे शाह जज्बात की रूह में बोला, 'जानता हूँ नसीम! वह अव्वल दर्जे का बेवकूफ और छोरा है, लेकिन दिल का बुरा नहीं। कल से गाँव में आया हुआ है, रात काफी देर तक हमारी बात-चीत होती रही। दौरान-ए-गुफ्तगू उसने मुझे सब कुछ बता दिया और साथ ही साथ उसकी असलियत को भी जाहिर कर दिया कि किस कदर रवायत था वह और उसके साथ ही मेरा दिल भी...'"

"कहते-कहते बूटे शाह का गला भर आया। 'अच्छा उठ...' यकायक वह बोल उठा, 'पहले जाकर चिराग रोशन कर, अंधेरा होने लगा है।'

नसीम ने हुक्म की तामील की। उन्हीं जज्बात के जेर-ए-असर वह बोला, 'जिस कदर एक भाई अपनी बहन से कह सकता है, शायद आज मैं उससे ज्यादा कह गया हूँ। ये कभी नहीं भूलता कि उस पाजी (यूसुफ) ने तेरी मोहब्बत...'"

पृष्ठ 35

को बेइज़्ज़त किया है , लेकिन उस गुनाह की पूरी-पूरी सज़ा पा चुका है जिसकी बाबत वह अपनी ज़बान से कुछ न कहेगा। उसे यहाँ का बच्चा-बच्चा जानता है। नसीम! इस मर्तबा जो यहाँ आया है, तुझे हासिल करने के लिए नहीं। क्यों कि ऐसी उम्मीद अब उसे नहीं है। अब इसमें इससे ज्यादा और क्या

हो कि अगर उसका हाथ पकड़ कर उसे न बचाएगी तो वह ज़िंदा न रहेगा। वह बदनसीब ये बात तो कह चुका है। अब उसकी मौत ही बाकी है, ये ही समझे।

नसीम की निगाहें झुकी हुई थीं। उसकी लंबी-लंबी पलकों पर नन्हे-नन्हे कतरे चमक रहे थे। शायद इस खौफ से कि कहीं रो न पड़े। दोनों होंठों को उसने दांतों तले दबा रखा था।

बूटे शाह उठ खड़ा हुआ और जाते-जाते ये कहकर गया: 'मैं इस बात का यकीन दिलाता हूँ नसीम कि अपनी किसी भी बात को तुझे ज़बरदस्ती मनाने की मेरी कतई रज़ामंदी नहीं है। सिर्फ यही चाहता हूँ कि अगर तू राजी हो तो दिन चढ़ने से पहले अपने कुएं पर चली जाना। वहीं यूसुफ मौजूद होगा। वह तुझसे कुछ बातें करना चाहता है। अगर न जाना चाहो तो मैं तुझे मजबूर न करूँगा।'

ये कहते-कहते वह घर से बाहर निकल गया।

पृष्ठ 36

पूर्णिमा की चांदनी रात, सावन का महीना। बरगद के सायेदार दरख्त के नीचे न जाने कितनी देर तक गाँव की नौजवान लड़कियाँ और औरतें गिद्धा और भंगड़ा नाचती रही थीं।

सब के वापस आ जाने पर नसीम वहीं बरगद के नीचे से हटकर खड़ी थी, किसी के इंतज़ार में। यकायक चांदनी में उसने दूर से देखा एक इंसानी साया, जो उसकी तरफ बढ़ता चला आ रहा था। जिसे देखते ही नसीम पुकार उठी।

'यूसुफ...!'

'जवाब में नसीम पुकारता हुआ यूसुफ उसके करीब आ पहुँचा।'

'कैसी हो नसीम?'

'अल्लाह का फज़ल है।'

'काफी इंतज़ार करना पड़ा?'

'नहीं, तो सब अभी-अभी गई हैं।'

'अम्मां कैसी हैं?'

'तबीयत खराब ही रहती है।'

'अल्लाह करम करेगा...'

'कब लौटे हो रावलपिंडी से?'

'कल ही तो।'

'किसने घर आने पर तुझे कोई बाँध लिया जो मिलने के लिए कहलवाया।'

'कितना लंबा हो गया है तू, यूसुफ!'

बातों का सिलसिला जारी रहा। 'नसीम! तेरे लिए एक चीज़ लाया हूँ, लेगी?'

'देखूँ तो क्या है?'

'ये रहा।'

पृष्ठ 37

"'अरे... इतने बड़े आम!'

'शहरों में इससे भी बड़े-बड़े आम होते हैं जिन्हें चूसा जाता है।'"

"'तो...?'"

"'चाकू से काटकर खाया जाता है, खरबूजे की तरह।'" और वहीं खड़े-खड़े यूसुफ उस आम को खरबूजे की तरह काटने लगा। उसकी फांकें नसीम ने लीं और नसीम खाने लगी। जब गुठली बाकी रह गई तो उसने हाथ में पकड़े हुए ले ली।

"'क्यों यूसुफ! अगर इसे बोया जाए तो क्या इतने ही बड़े आम लगेंगे?'"

"'क्यों नहीं लगेंगे?'"

"'तो मैं इसे बोलूँगी, अपने आँगन में।'" और घर पहुँचकर नसीम ने रातों-रात वह गुठली अपने आँगन के एक कोने में बो दी।

दो-एक दिनों में यूसुफ शहर लौट गया और उसके बाद एक तवील अर्से (लंबे समय) तक वापस न आया। लेकिन नसीम को कभी-कभी उसकी बाबत खबरें मिलती ही रहती हैं। एक रोज़ जब नसीम ने सुना कि यूसुफ पुलिस में भर्ती हो गया है, तो उसके दिल में खौफ के लरज़ उठ (कंपकंपी) उठे। पुलिस के नाम से नसीम को नफरत थी। यूँ भी उस जमाने में पुलिस के महकमे को हर शख्स नफरत की निगाह से

पृष्ठ 38

"देखता था। अक्सर यही ख्याल किया जाता था कि दस नंबर के मुजरिम ही पुलिस में भरती होते हैं। उसके बाद नसीम को कुछ और सुनने को मिला- यूसुफ किसी छिनाल औरत के दामन में गिरफ्तार हो गया है। इसी तरह की कई और बातें उसे सुनने को मिलीं। नतीजा ये हुआ कि नसीम के दिल में यूसुफ के लिए नफरत, बे-रुखी और बे-एतमादी के जज़्बात जाग उठे। उस वक्त तक वह आम का पेड़ सबज़-दरख्त (हरे-भरे पेड़) की शक्ल अख्तियार कर चुका था और उस पर बे-शुमार सबज़ और चहकते-महकते फूलों का घटाटोप छा गया था। कई मर्तबा जी चाहा कि यूसुफ की उस यादगारी निशानी, उस दरख्त को काट फेंके। लेकिन चाहने हुए भी वह अपनी इस ख्वाहिश को अमली शक्ल न दे पाई।"

पृष्ठ 39

"सुबह जब गाँव की मस्जिद में 'अल्लाह-हू-अकबर' की आवाज़ गूँजने लगी तब तक नसीम अपने घर से निकलकर लंबे कदम रखती हुई सड़क पार कर चुकी थी और अब अज़ान का आखिरी हिस्सा 'ला इलाहा इल्लल्लाह' की तिलावत हो रही थी। तो नसीम ने खुद को गाँव के बाहर एक पगडंडी पर पाया।

अज़ान की आवाज़ में वह इस कदर बे-सुध थी कि गाँव से लेकर खेतों तक का रास्ता किस तरह खत्म हुआ, उसका होश न था और न उसे ये खबर थी कि उसके पीछे कौन चला आ रहा है।

अज़ान खत्म होने पर जब पीछे की तरफ से उसे किसी के कदमों की आहट सुनाई दी तो एक दम ठहर सी गई और उसने सहमे हुए पीछे की तरफ मुड़कर देखा। उसके होंठों से एक पुर-इत्मीनान आवाज़ निकली।

'भाई जान आप...?'"

पृष्ठ 40

"बूटे शाह ने उसके बराबर पहुँचकर कहा-

'हाँ, मैंने सोचा शायद अकेले में कहीं डर न जाए।'

नसीम झिझक उठी। कुएं तक का बाकी रास्ता न तो बूटे शाह ने एक लफ्ज़ भी बात-चीत की और न नसीम ने ही। दोनों खामोशी अख्तियार किए आगे-आगे चलते रहे। दोनों थोड़ी दूर ही गए थे कि करीब से खेतों की पगडंडी पर किया, जो नहर के किनारे-किनारे से होती हुई फसल के करीब से कुएं तक चली गई थी।

एक सफेद कपड़े पहने कोई इंसानी साया नज़र आया। और दो-चार कदम चल कर दोनों ने पहचान लिया, वह चौधरी फज़ल करीम था। असली पगडंडी को हटाकर बूटे शाह एक दूसरी पगडंडी पर चल

पड़ा, ताकि चौधरी उसे न देख ले, नसीम भी उसके पीछे-पीछे हो ली। कुएं के करीब पहुँचकर जब बूटे शाह ने यूसुफ को कुएं के इंतज़ार में टहलते देखा तो वह नसीम को यह कह कर दाईं तरफ मुड़ गया-

'मैं ज़रा खेतों में से होकर आता हूँ।'

कम-सिनी में ही यूसुफ के सिर से बाप का साया उठ गया था। उसके बाप जिसे 'दुल्ला' कहकर पुकारा जाता था, कौम का लोहार था जो रेलवे स्टेशन पर मुलाजिम था। लेकिन जवानी में ही रेलवे के एक हादसे में उसका एक पाँव कट गया था। और वह मामूली सी दो-चार सौ रुपये की रकम लेकर घर आ गया। पाँव कट जाने के बाद उसे हॉस्पिटल से निकाल दिया गया। लेकिन उसकी हड्डी में कोई ऐसी कमी रह गई थी जो आखिर में उसकी मौत की ..."

पृष्ठ 41

" वजह बन गई। चंद दिनों बाद यूसुफ की मां भी अल्लाह को प्यारी हो गई।

आखिर जीने की फिक्र ने उसे रावलपिंडी पहुँचा दिया, जहाँ उसने एक टांगे की वर्कशॉप में मुलाज़मत (नौकरी) कर ली।

बचपन से ही वह आज़ाद-तबीअत था, बाहर जाकर और ज़्यादा आज़ाद हो गया , लेकिन वह गाँव से लगाव खत्म न कर सका। जिसकी वजह अकेली नहीं, दो थीं। एक तो नसीम की कशिश (आकर्षण) और दूसरे अपने हमदर्द दोस्त, बूटे शाह की मोहब्बत।"

"उन दिनों पंजाब में पुलिस की भरती हो रही थी। जिसमें यूसुफ ने भी अपना नाम लिखवा दिया। ऊंचे डील-डौल और तंदुरुस्त होने की वजह से उसे भरती में देर न हुई।

इसी दौरान यूसुफ एक ऐसी औरत के फेर में पड़ गया जिसे उसके शौहर ने छोड़ दिया था, लेकिन वह चंद रोज़ के बाद ही उसे धोखा देकर न जाने कहाँ चंपत हो गई। अब उसकी हालत धोबी के कुत्ते जैसी हो गई थी। न घर का न घाट का। नतीजतन माज़ी (अतीत) की यादों में उसे नए सिरे से कुछ देते लगे और वह चंद रोज़ की छुट्टी लेकर गाँव आ पहुंचा और आते ही उसने बूटे शाह को तन्हाई में बुलाकर अपने दिल का दर्द सुनाया और उससे मुतासिर होकर बूटे शाह ने यह मंसूबा-बंदी की।"

" बूटे शाह उन दोनों के जज़्बात-ए-उल्फत (प्रेम भावनाओं) से ना-आश्ना (अनजान) न था। उसकी चाहत थी कि नसीम से यूसुफ की शादी हो जाए। ऐसी सूरत में मुमकिन है कि यूसुफ की आदतें सुधर जाएं, इसीलिए उसने एक-दो मर्तबा चाची से बात भी चलाई, लेकिन उसने हमेशा एक ही जवाब दिया:

पृष्ठ 42

'बाबू जी की मौजूदगी में मैं कौन होती हूँ इस मामले में सलाह देने वाली?' और जब उसने अपने वालिद (पिता) के सामने यह राय पेश की तो बंदूक की तरह सनसनता हुया जवाब उसके कानों में गूंज उठा: 'सब बे-वकूफ हैं, मेरी नसीम के लिए निक्कमे ही रह गए हैं!'"

बूटे शाह के चले जाने के बाद नसीम ने निगाहें उठाकर सामने की तरफ देखा और देख कर मुतफक्किर (विचारमग्न) हुई: 'क्या यही यूसुफ है?' शायर गुलाम रसूल की तस्नीफ 'यूसुफ ज़ुलेखा' का किस्सा उसे याद आ गया। उसे महसूस हुआ कि इस किस्से में पढ़े हुए यूसुफ का लहज़ा और यूसुफ का ढंग बहुत कुछ मिलता-जुलता है।

नसीम की निगाहें एक मर्तबा उठकर फिर झुक गईं। शायद उसकी खूबसूरती और उसकी मस्ती भरी जवानी की चकाचौंध को वह बर्दाश्त न कर सकीं, लेकिन इसके साथ ही उसके दिल में नफरत बेदार (जागृत) हो उठी जो लम्हा भर में ही उसके तमाम जज़्बात पर तारी हो गई। उसके दिल की गहराइयों से एक दिल-शिकन हुक सी उठी:

'काश! कभी यह यूसुफ भी ज़ुलेखा के यूसुफ (अलैहिस्सलाम) के बेटे जैसा नेक और पाक होता...।'

और दूसरी मर्तबा नसीम की निगाहें उठीं, तब उसके कानों ने एक कमज़ोर सी आवाज़ सुनी:

'आ गई नसीम?'

नसीम ने कोई जवाब न दिया, उसका दिल धड़क रहा था और गला खुशक (सूखा) हो गया था।

'अंदर आजा।' कह कर यूसुफ झोपड़ी में दाखिल हुआ और उसके पीछे लड़खड़ाते पांवों के साथ नसीम भी। अंदर सूत की एक चारपाई बिछी हुई थी, यूसुफ का इशारा पाकर वह

पृष्ठ 43

उसकी पट्टी पर बैठ गई।

दोनों आमने-सामने लम्हा भर खामोश बैठे रहे।

आखिर यूसुफ ने उस खामोशी को यह कह कर खत्म किया: 'नसीम!'

नसीम फिर भी खामोश रही, सिर्फ उसकी मोटी और पुर-सुकून आँखें जो उस वक्त शिकारी के दाम में गिरफ्तार हिरनी की तरह खौफज़दा (भयभीत) थीं, ऊपर उठीं। जिनकी पुतलियों की सतह पर पानी सा झलक रहा था।

'मेरा ख्याल था तू न आएगी।' यूसुफ ने उसकी आँखों में रक्स (नृत्य) में दर्द के असरात देखकर कहा। 'किस तरह न आती।' नसीम ने इस छोटे से जुमले को गला -साफ करते हुए मुकम्मल किया। उसके प्याज़ी होंठों का रंग उस वक्त नीलोफर के फूलों जैसा हो रहा था और उसके दाएं हाथ की उंगलियां अपने सिर के आँचल की किनारी को मोड़ने में मशगूल थीं, उसका सर झुका हुआ था।

'नसीम!' यूसुफ ने अपनी जगह से उठकर हक से पूछा, 'नाराज है मुझसे?'

जवाब में नसीम का सर फिर उठकर झुक गया। गोया उसका इशारा यूसुफ के सवाल का जवाब कह रहा था: 'इसमें क्या शक है?'

'बोल नसीम! तू तो मुंह में दही जमाए बैठी है।'

'बताइए।'

जवाब में वही मामूली व लफ्ज़-ए-ज़ाहिरी जो बड़ी मुश्किल से जुबान पर ला सकीं, उन की अदायगी में भी उसे काफी मुश्किल का सामना करना पड़ा। पुरानी रिवायत और आदतों के मुताबिक इस लफ्ज़ की अदायगी के शुरू से आखिर तक बोलने के अरसे में एक अहसास उसके दिल को छू कर गुज़र गया।

पृष्ठ 44

'"क्या यूसुफ अब भी नादान बच्चा है? जो उसे..बता ..कह के बे- इज़्ज़त करूँ? जबकि वह खुद मुझे सीमा की जगह नसीम के नाम से मुखातिब कर रहा है।'

'बताऊँ क्या नसीम?' झिझक के जाल से जो उसके चारों तरफ फैलता जा रहा था, खुद को आज़ाद करते हुए बोला- 'नसीम, मेरी बाबत तो बहुत कुछ सुन चुकी होगी और..."'

नसीम की निगाहें एक दफा फिर उठ गईं और इस दफा झिझकने की बजाय यूसुफ के चेहरे पर जम गईं। साथ ही उसके कान यूसुफ की बातों को जल्द-से-जल्द सुनने को बेकरार हो उठे।

यूसुफ कहता गया- 'और जो कुछ तो सुन चुकी हो, उसमें कतई झूठ नहीं है। मैं गुनाहगार हूँ, अल्लाह की दरगाह में भी और तेरे सामने भी। मुझे माफ कर दे नसीम...!'

नसीम ने देखा यूसुफ की आँखों में कफ़्फ़ारा की हकीकत भी थी। नसीम का दिल जो सीने से लेकर गले तक नफरत से लबरेज़ था, यूसुफ की बातें सुनकर तकरीबन साफ़ हो गया। लेकिन जैसे ही खुददारी और मज़हबी खयालात ने करवट बदली, दिल के साफ़ हो चुके शीशे को फिर उसने पहले जैसा खौफ़ की तह से धुंधला कर दिया। उसने अपने दिल से उस वक्त एक लावा सा अलबत्ता महसूस किया और उस उबाल का असर आखिर में आवाज़ बनकर उसके होंठों से फूट पड़ा-

'मैं कौन होती हूँ माफ़ करने वाली...!' कहते-कहते नसीम ने महसूस किया गोया उसकी आँखों के दोनों कोरों में किसी ने गर्म सलाई का सरका दिया, जिस की तपिश उसकी पलकों, पसीने की मिली हुई पानी की तरह पिघल कर उसके रुख़सारों तक बह आई।"

पृष्ठ 45

"'मान चाहे न मान नसीम...' यूसुफ ने भीगी हुई आवाज़ में कहना शुरू किया- 'कज़ा मेरे सिर पर सवार हो गई थी। मैं...'"

"'आप मुझे न बताइए...' उसने बेकरार होकर टोका- 'किसलिए बुलाया था मुझे, जल्दी कर, घर का सारा काम पड़ा है करने के लिए।'

'मैं ने बुलाया था, तुझे पहला प्यार याद दिलाने के लिए।'

नसीम का दिल बौखला उठा उसकी बात सुनकर। वह सोच रही थी- इस कदर बे-ग़ैरत है ये, कि अपनी मुहब्बत को कुचल-मसल कर फेंक देने के बाद भी मुझे मेरी मुहब्बत याद दिलाने के लिए आया है। गुस्से से नसीम के माथे पर सिलवटें पड़ गईं। उसने चाहा कि अभी लम्हा उठकर यहाँ से दौड़ जाए लेकिन दिल का बोझ हल्का किए बगैर उसके लिए उठना मुश्किल हो रहा था।

उसका गुस्सा आग के शोलों की तरह इस जुमले की शक्ल में भड़क उठा। 'कौन सा प्यार...?'

'भूल गई है नसीम?'

'शर्म नहीं आती होगी पूछते हुए? सच कहते हैं आदमी ढीठ होना चाहिए। शर्म तो आनी जानी है।'

यूसुफ का दिल इस कारी ज़र्ब (प्रहार) को बड़ी मुश्किल से बर्दाश्त कर सका। उसकी कुदरती सख्ती पुकार उठी- 'बे-गाने टुकड़ों पर पलने वाली एक छोकरी की ये मजाल?' लेकिन अंदरूनी तल्खी को अंदर ही अंदर पीते हुए और अपनी आवाज़ में बहुत ज़्यादा नर्मी और मामूली सी गर्मी शामिल करके बोला- 'नसीम! गुज़री बातें भूल जा। मेरी करनी मुझे पहले ही काफी बे-इज़्ज़त कर चुकी है।'

'लेकिन आपकी करनी की तो मैं ज़िम्मेदार नहीं हूँ।' नसीम ने उसी तरह ठंडी आवाज़ में जवाब दिया।"

पृष्ठ 46

"'नसीम...!' वह फिर गिड़गिड़ाया- 'देख मेरी दुनिया बर्बाद न कर।'

'मैं क्यों करूँगी, किसी की दुनिया बर्बाद, अल्लाह ताला उसकी दुनिया बर्बाद करे।'

यूसुफ की खुददारी एक दफा फिर बेदार (जागृत) हो उठी- 'तुझे शर्म नहीं आती और बे-ग़ैरत, एक लड़की से बे-इज़्ज़त होते हुए?' लेकिन उम्मीद की डोरी बहुत सी लड़ाइयाँ लड़ जाने पर थी। अभी एक-आध लड़ाई बाकी थी। जिसने खुददारी की ललकार को सब्र के धक्के के साथ पीछे की तरफ धकेल दिया। 'नसीम! मुझे माँ का दूध वह हराम जो मैं कभी तेरे साथ बे-वफ़ाई करूँ।' एक दफा तो...

'इस किस्म की कसमों की मेरे सामने कोई कीमत नहीं है।' नसीम ने लापरवाही से दूसरी तरफ मुँह फेरते हुए कहा।

'मैं कुरान के तीस पारों की कसम खा कर कहता हूँ नसीम...!'

'झूठी कसमें खाने वाले पर ख़ुदा का कहर नाज़िल होता है।' नसीम की आवाज़ में कतई नर्मी न आई। 'नसीम...!' इस मर्तबा यूसुफ को अपनी बर्दाश्त की ताकत ही काफ़ूर होती हुई महसूस हुई।

उसकी कड़कती हुई आवाज़ से खौफ़जुदा होकर नसीम ने उसकी तरफ देखा। यूसुफ की आँखों में वहशत (पागलपन) और हवस नाच रही थी, जिसे सहम कर कुछ खींच कर खाट से उठी और जाने के लिए तैयार हुआ, उसकी आँखों में उस वक्त निसानियत (मानवता) की मुकम्मल खुददारी रक्स (नृत्य) हो उठी।"

पृष्ठ 47

"'लेकिन वह दो कदम से ज़्यादा न बढ़ सकी, यूसुफ ने तड़पकर तेज़ी से उसका बाज़ू थाम लिया और यह कहते हुए चारपाई की तरफ खींच लाया- 'देख नसीम! इस कदर गुरूर अच्छा नहीं होता, ज़रा बैठ तो जाओ और एक-दो बातें मेरे साथ कर सके!'

सख्त और मज़बूत हाथ की पकड़ और उंगलियों की कड़ी हरकत ने नसीम के तमाम जिस्म को लरज़ा दिया, उसे अभी से आने वाले खतरे का अहसास होने लगा। लेकिन फिर भी वह डरी नहीं, यूसुफ ने उसे जहाँ लाकर बैठा दिया।

'नसीम...!' यूसुफ अपने गुस्से की तल्खी में नर्मी मिलाकर बोला- 'मैंने तुम्हें बुलाया था ज़ख्मों पर मरहम लगाने के लिए , अगर तूने इन ज़ख्मों पर नमक ही छिड़कना था, तो क्या ज़रूरत थी आने की?'

नसीम ठिठकी- 'ज़रूरत नहीं थी... अपने भाई के हुक्म से अदब में नहीं मना कर सकती थी।'

खिफ़्फ़त (शर्मिंदगी) की इस कदर ज़बरदस्त चोट, यूसुफ तलमिला गया... वह भूल गया कि क्या कहने के लिए उसने नसीम को खींचा है, उसकी मर्ज़ी के खिलाफ शायद खुद भी उसकी ज़ुबान से निकला- 'भाई! कौन तेरा भाई?'

'जिसके हाथों आपने पैगाम भेजा था!'

हसद (जलन) और हवस के असर में यूसुफ अपने गहरे दोस्त की दोस्ती को फरामोश कर बैठा, गरज कर बोला- 'वह तेरा भाई किस रिश्ते से है?'

'जिस रिश्ते से अज़ीज़ मेरा भाई है!'"

"नसीम के इस जवाब ने यूसुफ से ज़बरदस्त दिल पर एक और कोला (आघात) रख दिया...

पृष्ठ 48

अब उसकी हालत यह थी कि उसने अपने गुस्से की चिंगारी को समेट कर किसी तरह रोके रखा था, वह तमाम नसीम के इस जवाब से बिखर गई... 'क्यों नहीं, हिंदू तेरा भाई हो गया और हम मज़हबी बेगाने हैं!'

नसीम शेरनी की तरह दहाड़ कर बोली- 'भाई जान की शान में कुछ कहा तो मुझ से बुरा कोई न होगा!'

'क्या कहने हैं , बड़ी आफत है चहेती भाई की...' कहते-कहते यूसुफ का तमाम जिस्म गुस्से से लर्ज़ उठा।

'मैं कहती हूँ तहज़ीब की हद पार न कीजिए, वह न कहते , यहां थूकने भी नहीं आती!'

'मैं कहता हूँ आगे न बढ़, टूटी जूती की तरह, इतनी हूर परी नही रह गई है तू जो इतना गुमान हो रहा है तुझे!'

'हूर परियां गांव में नहीं मिलतीं, शहर के चौबारों में रहती हैं, वहां जाकर तलाश कर!'

'चुप रह गधी...'

'गधी होगी तेरी---!' उससे अगला लफ्ज़ 'माँ', नसीम के होंठों में ही था कि एक भारी हाथ का कड़कड़ाना उसके गाल पर पड़ा, नसीम का सर चकराने लगा और उसकी आँखों के आगे तारीकी

(अंधेरा) छा गई, उसने अपने जिस्म को यूसुफ के बाज़ुओं की पकड़ में देखा। नाखूनों और थप्पड़ों की मदद से उसने काफी कोशिश की खुद को आज़ाद करने की, लेकिन सांप के मुँह में छिपकली की तरह छटपटाते चिल्लाने. के .."अलावा कुछ न कर सकी। "

पृष्ठ 49

'हरामीज़ादी, कम-जात, बद-बख्त...' एक सांस में कहता हुआ यूसुफ ज़बरदस्ती उसका मुँह चूमने की कोशिश करने लगा, उसने दरवाज़े पर किसी के कदमों की आवाज़ सुनी। उसकी पकड़ ढीली पड़ गई, जिससे फायदा उठाकर नसीम ने एक ही झटके से खुद को आज़ाद कर लिया और बिना यह ख्याल किए कि दरवाज़े पर कौन खड़ा है, झोपड़ी से निकलकर बगीचे बाहर हो गई।

'क्यों रे हरामी के पिल्ले! दरवाज़े पर खड़ा नौजवान अल्लाह दत्ता चीते की तरह छापा मारकर यूसुफ पर झपटा।'

हालाँकि यूसुफ अपनी जवानी का बड़ा मगरूर (घमंडी) था और उसका कद अल्लाह दत्ता के कद से थोड़ा ऊँचा भी था, लेकिन अल्लाह दत्ता का जिस्म किसी चट्टान की तरह सख्त था।

उसने पहले ही वर में यूसुफ का गला पकड़कर झोपड़ी से धकेलते हुए कहा-

'आ बेटा-! तुझे बताऊं, पराई बेटियों को छेड़ने का क्या अंजाम होता है?'

'चल बे चल...' यूसुफ अपनी खूंटी दार मूछों को मरोड़ देते हुए हुंकारा- 'कहीं बत्तीसी न बाहर हो जाए!'

'क्यों...' मूंछों पर ताव देते हुए अल्लाह दत्ता ने फिर ललकारा- 'आ कर ले दो-दो हाथ, तेरी आज तक किसी उस्ताद से टक्कर नहीं हुई और मैंने भी तेरी चालों को देख देख कर...

और जुमला मुकम्मल होने से पहले ही दोनों गुथमगुत्था हो गए!'

यूसुफ को ख्वाब में भी ख्याल न था कि वह पस्त (नीच) शख्स उसे लम्हे भर में कुचल कर रख देगा... जब कपड़े फड़वा कर और घूँसों से मुँह और..."

पृष्ठ 50

"माथा नीला लाल करने के बाद उसने अल्लाह दता के फौलादी बाज़ुओं से निजात हासिल की तो उसकी निगाहें ज़मीन पर गड़ी हुई थीं।

कपड़े झाड़ते हुए अल्लाह दता ने झिड़क कर कहा- 'चला जा यहां से मुँह काला करके हरामी के पिल्ले! फिर जो तुझे गांव में देखा तो देख सिपाही गीरी घुसेड़ दूँगा तेरी सारी... कुतिया के पिल्ले ? शर्म न आई तुझे गांव की लड़की पर हाथ उठाते हुए? बेटा अगर गांव में आया तो पंचायत में बैठा कर मुँह तेरा काला न किया तो मुझे मां ने नहीं, कुत्ती ने जना है...!'

'अल्लाह दता...!' दांतों से बहते खून को पगड़ी के पल्लू से पूछते और हाँफते हुए यूसुफ गिड़गिड़ाया- 'भाई जान मुझे माफ कर दो मुझसे गलती हुई है।'

'गलती हुई है तुझसे...!' मुँह चिढ़ाकर अल्लाह दता बोला- 'गलती नहीं, ये तेरी हर रोज़ की आदतें हैं, बेटा आज कोई नई बात तो नहीं हुई!'

'अच्छा भाई...!' पहले की निस्बत और भी नर्मी अख्तियार करके वह बोला- 'इस दफा मेरी इज़्ज़त संभाल ले, गांव में किसी से ज़िक्र न करना। अगर फिर ऐसी बात देखने को मिली तो जो कहूँ सजा मेरी मंजूर,

गांव में ज़िक्र न करूं?' अल्लाह दता उसी रौब से झिड़क कर कहा- 'और जब बेचारे की बे-इज्जती तूने की है, वो क्या कहेगी? क्या मर गए हैं गांव वाले? अगर अपनी खैरियत चाहता है तो चुप-चाप चला जा, यहीं से बाहर रावलपिंडी की तरफ... बस मैंने सौ की एक ही बात बता दी है, गांव में पैर रखा तो हड्डी-बोटी एक कर डालूंगा तेरी...!'

और फिर यूसुफ सिर पर पैर रखकर भाग खड़ा हुआ।"

पृष्ठ 51

"ये महज बहाना था खेतों को देखने के लिए जाने का, असल में बूटे शाह की ख्वाहिश थी उन दोनों की मुलाकात कराने की, जिससे वो तन्हाई में खुलकर दिल से बातें कर सकें।

कुछ देर इधर-उधर टहलने के बाद वो वहीं लौट आया। उसे यकीन था कि अब तक उन दोनों की गुफ्तगू खत्म हो चुकी होगी, लेकिन वहां उसे झोपड़ी में एक ऐसी चीज़ नज़र आई जिस पर निगाह पड़ते ही उसकी आँखें सरसों फूल उठीं। गोया किसी ने उसके सीने में भाला भोंक दिया हो, इधर-उधर बिखरे हुए कांच की चूड़ियों के चंद टुकड़े, जिन्हें पहचानने में उसे देर न लगी। नीले रंग की चूड़ियां अक्सर नसीम की कलाइयों में उसे नज़र आया करती थीं। सिर पकड़ कर वो वहीं बैठ गया, किसी खौफनाक हादसे के ख्याल से वो लर्ज़ (कांप) उठा, बे-शुमार शक उसके ज़हन में आंधी की तरह घर उठे।"

पृष्ठ 52

"वो उठकर गांव की तरफ भागा और घर जाकर उसने जो कुछ देखा, जो हम पहले देख चुके हैं, अपने वालिद से लाठी का वार बर्दाश्त करने के बाद दिल की कोई बात उसने उनसे न छिपाई, और दोस्त की शक्ल में दुश्मन की बाबत सब कुछ सच-सच बयान कर दिया।

उस वक्त तक उसे इस मामले की बाबत उससे ज़्यादा वाकफियत न थी कि बेचारे नसीम के साथ क्या गुज़री, बाद में अल्लाह दता ने तफ़सील (विस्तार) से सारा हाल मालूम होने पर उसे कुछ इत्मीनान हुआ, दिल ही दिल में खुश हुआ कि मामला छीन-झपटी से आगे नहीं बढ़ा। उसकी धर्म की आबरू बच गई।

उसका जी चाहा कि जल्द-अज-जल्द नसीम के घर जाए, लेकिन उसके बाप ने उस से पहले वहां पहुंच जाना था, इसलिए उसने वहां जाने का अपना ख्याल दूसरे दिन के लिए मुल्तवी कर दिया।

दूसरे रोज़ जब नसीम से उसकी मुलाकात हुई तो झिझक और शर्म की वजह से उसके सामने हलक (गले) से आवाज़ निकालना मुश्किल हो गया, बड़ी मुश्किल से उसकी ज़ुबान से निकला-

'सीमा! मुझे माफ़ नहीं करोगी, इसमें मेरी ही गलती थी कि तुझे मैंने इस दरिंदे के पास जाने के लिए कहा था।' बहुत नाराज़ हो मुझसे ? --कहते-कहते उसका गला भर आया।

नसीम ने ज्यों ही उसकी आँखों में नमी देखी तो भाई की मुहब्बत भी बे-काबू हो गई। वो अपनी जगह से खिसकी और बूटे शाह के कंधे के हाथों से नीचे की तरफ दबाती हुई बोली..."

पृष्ठ 53

"'भला इसमें आपका क्या कसूर है? क्या आप मेरे दुश्मन थे?'"

"'बहन सीमा!'" उसने उसकी तरफ नज़रें उठाए बिना दरवाज़े की तरफ देखते हुए बूटे शाह ने कहा- "'मैं नहीं जानता था कि उसने...'" शर्म और तहज़ीब ने उसकी ज़बान रोक दी।

"'इस तरह दिल छोटा नहीं करते भाई जान!'" नसीम का एक हाथ उसके कंधे पर था। -"'मैं नहीं बोलूँगी आपसे अगर आपने ऐसी बातें करनी हैं।'"

मालूम होता था कि बूटे शाह के दिल का बोझ हल्का नहीं हुआ, जिसे हल्का करने के लिए आज नसीम के पास आया था। उसका दिल बराबर लानत दे रहा था।

"'आप न मानेंगे भाई जान!'" नसीम ने बूटे शाह के चेहरे के असरात में कोई फर्क न आता देख दुखी होकर कहा- "'मेरा दिल तोड़ने लगे हैं!'"

इस पर बूटे शाह की नज़रें ऊपर उठ गईं और नसीम की आँखों में जम गईं, गोया आँखों ही आँखों में कह रही हों- "'नसीम! मैं तेरा दिल तोड़ूँगा जो तेरे दिल को जोड़ने की फिक्र में घुल रहा है।'"

उसी तरह नसीम की आँखें जो आँसुओं से लबरेज़ थीं, उनकी तरफ देखते हुए बोला- "'सीमा! तेरा दिल किस कदर वसीह (बड़ा) है। कोई भी बहन मुझ जैसे बेवकूफ भाई को माफ़ नहीं कर सकती...'"

और उसने उसका हाथ खुद ब खुद उठ कर नसीम का सर सहलाने लगा।

पृष्ठ 54

अब तक सगरा सहन में झाड़ू लगाने में मशगूल थी, अंदर आते ही बोली- "'आज बहन-भाइयों में कौन सी संजीदा गुफ्तगू हो रही है?'

और दोनों की आँखों में देख कर मामले को तकरीबन समझ गई।

"'कुछ नहीं चाची!'" बूटे शाह ने नसीम की तरफ से तवज्जो हटाकर उसकी तरफ देखा। "'कल की बात कर रहा था, सीमा को कहने आया हूँ कि कोई बात दिल पर न लगाए, जो जैसा करे, वैसा भरेगा।'"

सगरा के सूखे हुए, पीले चेहरे पर अंदर की तरफ धंसी हुई आँखें, जिनके बाहर स्याह (काली) झुर्रियां पड़ी हुई थीं, इस तरह ठहरी थीं जैसे कोई चोंच वाली मुर्ग़ी, छील झपटने के खौफ से लर्ज़ा उठती है। उसके कमज़ोर गर्दन पर उभरी हुई नीली नसें और ज़्यादा साफ़ हुई थीं और एक सर्द आह लेकर बोली-

"'बेटा! क्या पूछता है, सारी रात आँखें फूट जाए जो लगी हो। अल्लाह ने ये दिन भी दिखाना था। इतनी उम्र गुज़र गई गाँव में रहते हुए, आज तक किसी ने भी किसी की आँख उठाकर नहीं देखा। मालूम नहीं ज़माने पर क्या आफत आई है। अल्लाह के इस नामुराद को , जवानी टूटे को ये भी ख्याल न हुया कि..."'

बात काट कर बूटे शाह बोला- "'अच्छा चाची! भूल जा इन तमाम बातों को। अरमान एक ही है कि वो काबू नहीं आया, वरना देखते कि जैसा बुरहाल करता... उसकी किस्मत अच्छी थी जो बच निकला।'"

" दूधों नहाओ पूतों फलो बेटा ... पुर-जज़बात होकर सगरा ने. कहा-..

पृष्ठ 55

 "'अल्लाह की मेहर और तुम्हारी बरकत का सदका है, वरना मेरे से जैसी की बात किसने पूछनी थी। सब कुछ हो चुका, खुदा तुम्हारी उम्र दराज़ करे। जब तक बाबू जी का और तुम्हारा साया सर पर है, हमें किस बात का फिक्र। आज कल तो कोई रिश्तेदार और अपने भी नहीं पूछते। खुदा मुझे इन दोनों मासूम बच्चों के नसीब को तुम्हारे साये तले ले आए... वरना..."'

"'छोड़ चाची...!'" बूटे शाह को ये बातें पसंद न आईं। "'क्या ले बैठी है, ये भी कोई कहने वाली बातें हैं। कृष्णा बहन का इंतकाल न होता तो शायद ये न होता। सीमा से... अब तो सच कहता हूँ चाची! कभी

कभी ख्याल आता है कि भगवान ने कृष्णा के बदले में मुझे सीमा दी है। बाबू जी कभी कभी जब जिक्र होता है, कहते हैं, कृष्णा भी ऐसी ही भोली-भाली थी।'"

सगरा सारा दर्द भूल गई, बोली- '"बेटे ! अल्लाह मियां तुझे सलामत रखे, कृष्णा से मेरा कम मोह था? इस कदर होनहार लड़की किसी ने ज़माने में देखी थी? चंद दिनों में ऐसी नज़र आने लगी थी, गोया परियों के मुल्क से आई हो। दिल देख देख न भरता था। अल्लाह मियां अगर उम्र का धागा न काटता, तो आज मेरी कृष्णा संभाले न संभलती... पर बेटे! मरने वालों के पीछे नहीं मर सकते। सीमा पहले आपकी और फिर मेरी है, खैर जो हुआ सो हो गया। लेकिन एक बात समझा दे अपनी बहन को कि अकेली दुकेली खेतों में न जाया करे, जाना भी हो तो संग साथ लेकर जाया करे। देखो बेटे! ज़माना पहले जैसा नहीं रहा। गाँव हमारा दूसरे गाँवों से...'"

पृष्ठ 56

"...अच्छा है लेकिन दानिशमंदों ने कहा है- मन का भाया खाया जाए और रब का भाया न खाया जाए, क्यों- लोगों के ज़िक्र का ज़रिया बनें हम ।"

"यह बात दुरुस्त है चाची तेरी...।" फिर उसने नसीम की तरफ देख कर कहा- "अकेले आने-जाने की ज़रूरत ही क्या है सीमा, आसपास कोई साथ न मिले तो अपनी भाभी को भी साथ ले जाया कर।" "दरवाज़े के साथ दरवाज़ा है, आवाज़ देने पर पहुंच जाती है, कोई ज़्यादा दूर है...?"

नसीम ने खामोश रहकर इज़्ज़त भरी निगाहों से उसकी तरफ देखा, उसकी नज़रें एहसान के बोझ से झुकी हुई थीं। आते वक्त बूटे शाह के दिल पर जो ना-काबिले-बर्दाश्त बोझ था, वापसी में वो तमाम हट चुका था।

पृष्ठ 57

इस वाकये के चार-पांच रोज़ के बाद बूटे शाह को यूसुफ का एक लिफ़ाफ़ा मिला। इसमें दो खत थे, एक उसके नाम और दूसरा नसीम के नाम।

दोनों खत पढ़ने के बाद बूटे शाह के दिल में दो मुख्तलिफ खयालात में कशमकश शुरू हो गई। गुज़िश्ता कई दिनों से यूसुफ के लिए दिल-ओ-दिमाग़ में जो नफरत का लावा उबल रहा था, लेकिन इन खतों को पढ़कर उस पर दूसरा ही असर हुआ। उस रोज़ अगर यूसुफ बाहर ही बाहर रावलपिंडी न चला गया होता तो मुमकिन था कि दोनों में हाथ-पाई की नौबत आ जाती। लेकिन उसने थोड़े ही पन्ने का काग़ज़ों को देहकती हुई आँखों पर पांच-छह घंटे पानी में भिगो दिया था कि उन्हें पढ़ते-पढ़ते उसकी आँखें नम हो गई थीं। दिल की गहराइयों से एक सर्द आह के साथ निकला...।

पृष्ठ 58

"आह बदनसीब यूसुफ...!" नसीम के नाम आए खत को उसे देने से पहले उसने इसे खुद पढ़ना मुनासिब समझा। उसे खौफ था कि कहीं पहले जैसा हादसा न हो जाए।

खत पढ़कर बाबू जी ने काफी गौर के बाद उसे नसीम तक पहुँचाने की इजाज़त दे दी तो बूटे शाह वहां जाकर चुपके से खत नसीम को दे आया और वापस आया, नसीम के रोकने पर भी वो न रुका। तन्हाई में बैठकर नसीम ने उसे पढ़ना शुरू किया। तकरीबन दो-तीन पन्ने थे और दोनों तरफ लिखे हुए थे। पढ़ने के बाद नसीम की गोरी चेहरे पर लर्ज़िश (कंपन) आ गई। उसकी आँखों की पुतलियों पर जमी हुई पानी की दो धारों में तकसीम होकर बहने लगीं और उसकी धुंधली नज़रों के बारे में इन अल्फाज़ को दोहराने लगीं।

"...नसीम! तुम ने उस रोज़ कहा था... मैं तुम्हारी शक्ल नहीं देखना चाहती, अल्लाह तआला ने चाहा, तेरी यह मुराद पूरी हो जाएगी, अब तुम मेरी शक्ल कभी न देखोगे... लेकिन एक ही अरमान रह गया नसीम, अगर तुम ने मुझे माफ़ न किया। तो मेरी रूह कब्र में जाकर तड़पती रहेगी, मैं जानता हूँ कि मेरा गुनाह ऐसा नहीं जिसे बख्श न सके, मगर इस बात से भी अनजान नहीं हूँ कि तेरा दिल किस कदर वसीह (बड़ा) है, तू ने मुझे कितनी मर्तबा माफ़ किया है। मेरा ख्याल है कि जो इंसान किसी के छोटे-छोटे सैकड़ों गुनाहों को माफ़ कर सकता है, उसके लिए एक..."

पृष्ठ 59

"...गुनाह माफ़ कर सकन मुश्किल नहीं।"

वह इसी तरह खत पढ़ती गई और पढ़ कर रोते हुए आँसुओं को पोंछती गई।

और जब वह बाहर सहन में निकली तो उसे महसूस हुआ कि उसके दिल का एक बोझ हट गया। और उसकी जगह एक दूसरा बोझ जो पहले की निस्बत कहीं ज़्यादा वज़नी है, लद गया है। यूसुफ के लिए

नफरत का कोई जज़्बा उसके दिल में न रहा। बल्कि उसकी जगह हमदर्दी ने ले ली, कभी हुई मुहब्बत की चिंगारी को फिर से सुलगा कर उसके सोये हुए जज़्बात को बेदार कर रही थी लेकिन साथ ही नए बोझ ने उसे अपने दिल को पस्त होते हुए महसूस किया। वह थी यूसुफ की ज़िंदगी की फिक्र। रह-रह कर खत के ये अल्फाज़ उसके दिल में सूराख़ कर रहे थे—

"तू मेरी शक्ल कभी न देखेगी... कब्र में भी मेरी रूह तड़पती रहेगी।"

तो क्या वाक़ई यूसुफ कुछ करने के लिए आमादा है, कहीं ज़िंदगी पर खेल न जाए! है तो ऐसा ही दीवाना... मगर-मगर।

उसके आगे वह कुछ भी न सोच सकी। लेकिन एक हल्की सी टीस है उसे अपने दिल की गहराइयों में अंगड़ाई लेती हुई महसूस हुई। अगर एक आधा खत उसे और भेज दूँ...! लेकिन फौरन ही वो "ऊँह" कह कर बाहरी दरवाज़े की तरफ मुड़ गई। दरवाज़े की तरफ आते हुए सबसे पहले उसकी निगाह जिस चीज़ पर पड़ी, वह था आम का दरख्त जिस की तरफ गुज़िश्ता कई दिनों से उसने तवज्जो न दी थी।"

पृष्ठ 60

वह चिओंटी की चाल चलती हुई उस दरख्त के करीब जाकर खड़ी हो गई। उसे महसूस हुआ कि गोया इसी एक हफ्ते में दरख्त की जवानी बुढ़ापे में तब्दील हो गई है। हालांकि पत्तों की ज़र्दी और मुरझाने की वजह पतझड़ की तेज़ हवा थी लेकिन नसीम ने महसूस किया गोया यह सब कुछ उसकी लापरवाही से हुआ है। उसने पानी का एक घड़ा लाकर दरख्त की जड़ों पर उड़ेल दिया। लेकिन इसके बावजूद उसके दिल का दुख न हुआ। उसके ख्यालात की रवानगी उसी सिमट रही जिस सिमट वह उसे मोड़ने की कोशिश कर रही थी और यह रवानगी उस वक्त तक रही जब तक कि उसने कागज़ और कलम-दवात से खत का जवाब लिखना शुरू न कर दिया।

खाने-पीने से फ़ुरसत पाकर सगरा सो चुकी थी। नसीम को और कोई काम न था। बस अब खत था या नसीम। खत लिखते-लिखते नसीम को इस बात का क़तई ख्याल न आया कि वह इसे भेजेगी किस तरह? खत लिखने के बाद उसे इस बात की फिक्र पैदा हुई तो वह बे-चैन हो गई। यूसुफ का पता उसे मालूम न था। शायद यूसुफ ने जान-बूझकर खत में अपना पता तहरीर नहीं किया था। या शायद वह खत का जवाब बूटे शाह के ज़रिये ही मंगवाना चाहता हो। क्या यह खत बूटे शाह के हाथ में दिया जा सकता है? इस ख्याल ने नसीम को शर्म से पानी-पानी कर दिया। आखिर उसने दोनों खत कपड़ों के ट्रंक में रख दिए। रात भर एक बड़ा ज़हन ख्यालात में खोये हुए गुज़र गया, खत भेजे तो किस?

पृष्ठ 61

"अगर ये न भेजा तो हो सकता है कि यूसुफ कुछ और कर बैठे।

रात गुज़री, दूसरा दिन चढ़ा। तो भी नसीम के दिल पर रात की बे-आरामी सवार थी। यूसुफ को किसी अनजाने खतरे से बचाने के लिए जवाब देना ज़रूरी था लेकिन उसके साथ ही एक और वजह भी थी उसकी बे-चैनी। इन कागज़ों में नसीम की अपनी सच्ची मुहब्बत का यकीन था और यह भी उम्मीद थी कि यूसुफ को शरीक-ए-हयात पाकर वह खुद को खुश-किस्मत समझेगी अगर यूसुफ खुद को हकीकत में 'यूसुफ' (याकूब का बेटा) जैसा पाक और मासूम बना पाता।

खत के इन कागज़ों में नसीम ने अपने दिल की तमाम मुहब्बत, अरमान, मुस्तक़बिल की तमाम उम्मीदें सुपुर्द करने के लिए भरी थीं लेकिन इसका क्या ज़रिया! क्या वह बूटे शाह से यूसुफ का पता पूछे, लेकिन यह तो सख़्त बे-इज़्ज़ती होगी उसके भाई जान की। वह सोचेगी शायद नसीम को उस पर भरोसा नहीं जो छिपकर खत लिखना चाहती है। सुबह से दोपहर तक वह इन्हीं ख्यालात में उलझी रही। खत जब तक डाक में न डाल दिया जाए, उसे महसूस हो रहा था या उसके दिल पर हज़ार बोझ लड़ा रहेगा ।

दोपहर के खाने पकाने से फ़ुरसत पाकर नसीम अंदर जा बैठी, सगरा कई दिनों के बाद रुकमीन से मिलने उसके घर गई थी। उस वक्त नसीम अपनी चारपाई पर बैठी यूसुफ का खत पढ़ रही थी और उसके बाद उसके जवाब में लिखे अपने खत को लेकर बैठ गई। जिस के हर लफ्ज़ को वह नफ़ासत की हैसियत से पढ़ने लगी। शायद उसमें कोई लफ्ज़ ऐसा हो जिसे यूसुफ -

के दिल को ठेस लगे, जबकि वह पहले ही बेचारा नाउम्मीदी के गहरे समंदर में गोते लगा रही होगा। खत के निस्फ (आधे) सफ़हात ही वह पढ़ सकी कि बाहर से आवाज़ आई- "सीमा!"

उसने तेज़ी से खत बिस्तर के नीचे छिपाते हुए जवाब दिया- "आ गई भाई जान!"

बाहर आकर उसने देखा। बूटे शाह बैठक में खड़ा था। चारपाई पर बैठ जाने के लिए नसीम ने बहुत कहा।

लेकिन वह खड़े ही बोला- "बैठने का वक्त नहीं है, एक ज़रूरी काम से तल्ी फाला जा रहा हूँ। सिर्फ बाबू जी का एक पैगाम तुझे देने आया हूँ।"

"कहिए भाई जान!"

"उन्होंने कहा है कि इस खत का जवाब यूसुफ को न भेजना।"

सुनकर नसीम की जान निकल गई। वह जानना चाहती थी क्यों? लेकिन पूछ न सकी। शायद बूटे शाह भी समझ गया कि नसीम इस पाबंदी की वजह सुनने के लिए बेकरार है उसने खुद ही बताना शुरू कर दिया-

"ये तो मैंने तुम्हें बता ही दिया था कि तुम्हारे खत को मैंने बाबू जी को दे दिया था और उनसे इजाज़त हासिल करके ही हमने दिया था। पता नहीं रात ही में उन्होंने क्या सोचा, सुबह उठते ही कहने लगे- 'बूटे! सीमा से जाकर कह कि खत का जवाब न दे...'"

अपने बयान को जारी रखते हुए बूटे शाह कहता गया- "सुनकर..."

पृष्ठ 63

"मुझे सख़्त हैरत हुई। मैंने पूछा- 'बाबू जी ! अगर जवाब न भेजने पर वो कोई और कदम उठा बैठे तो फिर क्या होगा?' जवाब में कहने लगे- 'इसकी तू फिक्र न कर, इस तरह के गैर-मुस्तकिल खयालात के लोग चाहे कुछ भी कर लें, लेकिन मरने की हिम्मत नहीं कर सकते। हिम्मत उन्हें लोगों में होती है जो अपने अहद और वादे के लिए अपने सर की बाज़ी लगा देना जानते हैं। जिस शख्स के दिल की हालत घड़ी में तोला, घड़ी में माशा रहने वाली हो, उसकी तरफ से ये अंदेशा करना नफ़ज़ूल है।'

साथ ही बाबू जी ने मुझे कड़ा हुक्म दिया है कि मैं कभी यूसुफ को खत न लिखूँ। ऐसा करने का मकसद शायद उसे नसीहत देना है। कुछ भी हो सीमा! ये तो तुम्हें तसलीम (स्वीकार) करना ही पड़ेगा कि बाबू जी के तजरबात हम से कहीं ज़्यादा हैं। उन्होंने जो कुछ हुक्म दिया है, सोच समझ कर ही दिया होगा। और मेरे ख्याल में हम दोनों को उस पर अमल करना पड़ेगा...।"

नसीम का जिस्म निस्फ से ज़्यादा ज़मीन में गड़ गया।

बूटे शाह ने सिलसिला जारी रखा- "मैं तेरा दिल तोड़ना नहीं चाहता। अगर तू जवाब देना चाहती है तो मुझे उसका पता लिख दे, मैं बे-शक तो डाल दूंगा। मैं बाबू जी से ज़िक्र न करूँगा।"

"नहीं भाई जान! बाबू जी ने ज़रूर सोच समझ कर ये कहा होगा। हम कितने ही समझदार क्यों न हों, लेकिन उनके सामने तो बच्चे ही हैं। मैं तो कई मर्तबा आज़मा चुकी हूँ, बाबू जी की बात पत्थर की लकीर होती है। उन्होंने जो कुछ कहा है मेरी भलाई के लिए ही

पृष्ठ 64

"कहा होगा। मैं खत न डालूंगी, आप उनसे कह दीजिएगा।"

बूटे शाह दंग रह गया। किस कदर एतमाद और एतेकाद (विश्वास) है इस लड़की को अपने बाप पर।

लेकिन बूटे शाह को बाप की दखल-अंदाज़ी कतई पसंद न आई। काम की जल्दी की वजह से बूटे शाह वहां और न ठहर सका। उसके जाने के बाद नसीम ने दोनों खत बिस्तर के नीचे से निकालकर फिर संदूक में रख दिए। एक मर्तबा ख्याल आया कि इन्हें फाड़कर फेंक दे, लेकिन वह ऐसा न कर सकी।"

पृष्ठ 65

"1946 का आखिर और 1947 का आगाज़ था।

पंजाब में लोहड़ी का त्यौहार मुश्तरका (साझा) तौर पर बड़ी शान-ओ-शौकत और धूम-धाम से मनाया जाता है। खास तौर पर देहात में रहने वाले कई माह पहले से इस त्यौहार का इंतज़ार करने लगते हैं। शायद इसीलिए हिंदू, सिख इसे 'सोने की रात' और 'मुसलमान' 'शब-ए-जश्न' के नाम से पुकारते हैं।

इसी सुनहरी रात का ज़िक्र है। गाँव के लोग शाम होते होते अतदुल (अतुल) की हवेली में जमा होने लगे। एक पुरानी चारदीवारी में घिरा हुआ एक छोटा सा मैदान था। इसी मुकाम पर लोहड़ी, होली, दशहरा और ईद वगैरह त्यौहार मनाए जाते थे। सब से पहले गाँव के बच्चे-बच्चियाँ आए, फिर नौजवान लड़के-लड़कियां और बाद में बूढ़े जमा हुए। तीसरी पार्टी के आ पहुँचने पर औरतों ने..."

पृष्ठ 66

"वहाँ से हट कर कुछ फासले पर एक अलहदा (अलग) लोहड़ी जमाई। उन्होंने नाचना गाने के लिए जलसे किए, और न जाने क्या हंसी-मज़ाक करनी थीं।

फिर बूढ़े बुज़ुर्गों के सामने ये सब कैसे मुमकिन था। मर्दों की लोहड़ी पर भी खूब रौनक़ थी लेकिन वहां कुछ कमी महसूस की जा रही थी। सभी लोग बाबू जी का इंतज़ार कर रहे थे, जिनकी गैर-मौजूदगी यहां रौनक़ न जमने दे रही थी।

एकाएक बाबू जी अपनी लाठी खटखटाते हुए वहां आ पहुँचे। उन्हें देखते ही उनके सवालों की बौछार होने लगी और देर से न आने की कैफियत तलब की जाने लगी, जिस के जवाब में बाबू जी ने बताया कि सगरा के मरज़ में कुछ इज़ाफा हो गया था इसलिए उन्हें रुकना पड़ा। नसीम की माँ सगरा का मरज़ कोई नया न था, बेचारी एक लंबे अर्से से दमे की मरीज़ थी। जब भी दौरा पड़ता तो कई कई

हफ्ते खाट पर पड़ी रहती। बाबू जी की ज़ुबानी सबको मालूम हुआ कि उसे साँस लेने में और भी दुश्वारियाँ हैं।

आहिस्ता-आहिस्ता लोहड़ियों की महफिल गर्म होने लगी। सब से पहले नौजवानों के गीत शुरू हुए, फिर भांगड़े की बारी आई। बाद में बात-चीत की, किसी ने खुद पर गुज़री, किसी ने दूसरों पर गुज़री, किसी ने किसी के दलेरी (बहादुरी) के वाकये , इस तरह एक दास्तान के बाद दूसरी और फिर तीसरी चलती गई और फिर चोरी, डाका और वारदातों पर तनकीद (आलोचना) होने लगी। लोहड़ी की तपिश में जैसे-जैसे इज़ाफा होता गया। इन बातों में रस भी उसी तरह बढ़ता गया..."

पृष्ठ 67

"मोलू कोछड़। जो अफीम का आदी होने की वजह से चालीस साला उम्र में ही बूढ़ा नज़र आने लगा था, गुड़ की मोटी रोटी, दांतों से खाली मसूड़ों से चबाता हुआ सुना रहा था।---- छेलिआं वाले मेहताब सिंह भसीन को तो आप जानते ही हो , ताज़ा बयाई (नई दूध वाली) भैंस उसकी चोर खोल ले गए। चंद दिनों ही हुए थे उसे खरीदे हुए। तीन सौ रुपये की खरीदी थी उसने भैंस, कैसी थी, मस्त थी बस। देख देख कर भी न भरता था। बात क्या हुई जी, भैंस को रातो रात यहाँ से पार ले गए चोर। भाई, खोजियों के भी क्या कहने । बूढ़ा सा मोची था , ढकवां का कोई। चोरों ने भी अपनी तरफ से बड़ी चालाकी की, कोस दो कोस वो भैंसों को रात को ही ले चलते रहे। मगर मोची बाप के बेटे ने भी ऐसी खोज लगाई कि कीले (ठिकाने) जा कर खड़ा कर दिया।

भगता ब्राह्मण बोला- "भई हक हलाल की कमाई होगी। वरना चोर से क्या कहना और माल का वापस आना क्या कहने..."

" खोजियों की भी तारीफ नहीं चाचा!" शाहना नौजवान बोला- "ये तो कुछ भी नहीं, बहुत दिनों की बात है, लालपुर के बंजर में पाँव में सींग बांध कर चोरों ने चोरी की। लेकिन खोज लगाने वालों ने फिर भी जाकर दबोच लिया।"

"एक से एक बढ़ कर पड़े हैं।" बूढ़ा दीना तरखान जो घुटनों और कमर में पगड़ी लपेटे और घुटनों को सीने से सटाए बैठा था, हुक़्क़े का सूटा(कश) लगा कर उसकी दूसरी तरफ बढ़ाते हुए बोला- "किसी चोर से तुम्हारा सामना नहीं हुआ। ये जितने भी आज कल चोरी करते हैं, ये तो जूती चोर हैं, जूती चोर।" और आखिरी अल्फाज़ की अदाईगी पर ज़ोर देने की वजह से उसे..."

पृष्ठ 68

"खांसी आ गई। बलगम थूकने के बाद वह फिर बोला- 'चोरी जिसकी पकड़ी गई... फिर वो माँ... चोर ही क्या हुआ? अपने ज़माने में हमने वो वो चोर देखे हैं कि आँखों का सुरमा तक निकाल लाएं और सुध न निकले।'

"अरे बस कर रे बाबा गप्पी ...! दरमियान में एक मुँह-फट बोल पड़ा- 'चोर नहीं, वो कोई मदारी होगा, मदारी।'

बाबू जी को गुस्सा आ गया। वो अपनी बिल्ली जैसी आँखें उस नौजवान की तरफ झपकाते हुए बोला- 'बैठ हरामी आराम से। बड़ा समझदार बन रहा है, तुझे क्या समझ उन बातों की... कल पैदा हुई गीदड़ी, आज निकाह ...!' और फिर करीब बैठे बुजुर्ग अर्जुन सभरवाल की तरफ देख कर बोला- 'न यकीन करेग अर्जुना , ! मैं तुझे आँखों देखी बात सुनाता हूँ। एक दफा जो हम वैसाखी पर गए , सैयद शाह के मेले में, इत्तेफाक से मेरा एक दोस्त मिल गया, वहां पर जो असली चोर कहा जाता है, वो था वो ...!' मुश्किल से डकार लेते हुए उसने कहा- 'ऐसी ऐसी चोरियां उसने की हैं, जो ज़माने में किसी ने क्या की होंगी। रात में हम गुलाब के बाग के करीब सोए, वो भी मेरे करीब खेस बिछा कर सो गया, काफी अरसा हुआ था। आधी रात तक हम गुज़री बातें करते रहे। उसने अपनी दिलेरी से की हुई चोरियों के किस्से सुनाए। हमारे करीब ही दो-एक खत्री एक खेस पर सोये हुए थे, खेत था या गलीचा था। सुर्ख रंग के डेढ़-डेढ़ हाथ के खेस थे। दरमियान में नीली और पीली धारियां थीं। कहा जा सकता है कि किसी राजा को तोहफा देने के लिए बनाया हो, उसे जितनी दफा देखें, नज़र हटाना मुश्किल था, मेरा दिल ललचा उठता था।"

पृष्ठ 69

"मैंने उससे कहा- 'भाई! उम्र दीन! मैं तुझे जब चोर मानूँग , जो इन खत्रियों के नीचे से खेस निकाल कर मुझे ला दे।' पाक मकाम (जगह) पर बैठे हुये है। झूठ गुनाह है , उसने न देरी की , न गौर किया। उठ खड़ा हुआ और कहने लगा- 'ले, ये भी कोई चोरी में चोरी है।' इस तरह के काम तो चोरों के चाकर भी कर लेते हैं और फौरन उठ कर उन दोनों खत्रियों के दरमियान जा कर लेटा हुआ। क्या मजाल! जवान दोनों खत्रियों को, किसी को भी भनक भी पड़ी हो। कुछ देर तो वो दांत भींच कर चुप दोनों के दरमियान पड़ा रहा। फिर आहिस्ता-आहिस्ता एक को कभी दूसरे को कंधे मार मार कर, करवट से खिसकाता गया। और साथ ही साथ खेस को , अपनी तरफ खिसकाता गया। तभी मालूम हुआ कि वो आदमी का बच्चा खेस को बगल में दबाए मेरे सरहाने आकर खड़ा हुआ। दोनों खत्री ज़मीन पर पड़े खराटे भर रहे थे। इसे कहते हैं, आँख में सुरमा चुरा ले आने वाली चोरी।"

"भई वाह !ये बात हुई न...!" इसी तरह सबने तारीफ की और चोर और उसकी चोरी की दाद देने लगे।

तारा सिंह चड्ढा लोहड़ी की तपिश से बचने के लिए पीछे की तरफ सरकता आ रहा था, लोई उतार कर समेटा हुआ बोला --

"आजकल जो मज़हबी चोर पैदा हो गए हैं, इन्हें हम क्या कहें, किसी बे-चारे राही को पीछे से आकर छुरा मार देना।"

"लच्चरपन है और क्या है ये सब।" दीना फिर बोला- "ये तो आजकल की बहादुरी रह गई है।"

दीने की बात सुनकर भगता ब्राह्मण कहने लगा- "बात ये है..."

पृष्ठ 70

"भाई! दीने, ये छुरे चलाने वाले , जो तू कह रहा है ना! सच पूछो तो इसमें कसूर इन बेचारों का भी नहीं, ये सारी मेहरबानी हमारे इन लीडरों की है, जो लेक्चर दे कर हम सब को आपस में बिदा देते हैं और खुद दूर बैठे तमाशे देखते रहते हैं। आबी सामने ही देखिए, बंगाल में, जो खून-खराबा हुआ था, किसने कराया था? फिर बारी आई बिहार की... एक मुकाम पर हिंदू कत्ल किए गए और दूसरी जगह मुसलमान। तो उन लीडरों की माँ का इसमें क्या गया, मर गए माँयों के बेटे... कहीं कोई लीडर मरा है? लोगों को लड़ा कर छोड़ दिया। खुद एक तरफ हो जाते हैं। गाँव में आग लगी, कुत्ता नाली में ।"

"आप की बात लाखों रुपये की है, ओझाजी...!" संते चंड़ोक ने सेंक से तपते हुए अपने चेहरे पर हाथ फेरते हुए कहा- "पता नहीं इन लोगों को कब अक्ल आएगी। पता नहीं इस तरह लड़ाकर मुल्क तबाह करेंगे ये कड़म चौधरी...!"

बाबा भाने अभी तक खामोश बैठा हुआ था। जवाब में बोला- "ज़रा सुनिए, लीडर भी सभी एक जैसे नहीं होते, जिन लीडरों के दिल में हिंदू और मुसलमानों का एक जैसा दर्द है, उनकी बात सुनता कौन है, गांधी जी ने मरने का व्रत रख रखा था, पिछले महीने ...?" जवाहर लाल ने बिहार के हिंदुओं को ललकार कर कह दिया था कि अगर आप सब मुसलमान भाइयों पर ज़ुल्म करने से बाज़ न आएंगे, तो मैं बम मार-मार कर आप सब को तबाह कर दूँगा । और आखिर दोनों लीडर वहां से वापस आए, अमन करव कर - लेकिन ताली हमेशा दोनों हाथों से बजती है। अगर..."

पृष्ठ 71

"दूसरी तरफ के लीडर भी इस तरह की कोशिश करते तो आज दंगे फसाद का कहीं नामो-निशान न रहता।"

"मज़हबी मामलों में दखल न दीजिये बाबू जी ...!" लोहड़ी के अखाड़े में से एक तेज़, तीखी आवाज़ सुनाई दी- "मुसलमान लीडरों पर इल्ज़ाम लगाने का आप को कोई हक नहीं।"

सब की तवज्जो इसी तरफ हो गई। लोहड़ी की आग में सिंदूरी लपटें उठ रही थीं और जैसे-जैसे तपिश बढ़ती जाती, चारों तरफ घेरा छोटा होता जाता था। आहिस्ता-आहिस्ता सब ही पीछे सरकने लगे। बाबू जी की बात के जवाब में बोले थे मुंशी अब्दुल रहमान , जो यहाँ के सरकारी स्कूल का मास्टर था।

अब्दुल रहमान पास के गाँव का रहने वाला था , जो इस गाँव से मुश्किल से मील सवा मील के फासले पर स्थित था। दोपहर का खाना साथ ले के रोज़ाना सुबह से अपने गाँव से आता और शाम को छुट्टी होने के बाद वापस चला जाता। लेकिन इधर कुछ दिनों से वो रात में भी यही ठहर जाता, जिस की एक खास वजह थी।

चूंकि बाबा भाना और बूटे शाह इस गाँव में तालीम याफ्ता (शिक्षित) समझे जाते थे और उन्होंने एक आधा अखबार भी जारी कर रखा था। जब भी डाक आने का वक्त होता, गाँव से कई लोग जो खबरें सुनने के शौकीन होते, बाबे जी की हवेली में जमा हो जाते थे। लेकिन इधर चंद दिनों से इन शौकीनों की तादाद कम होने लगी थी, जिस की वजह ये थी कि मुंशी अब्दुल रहमान ने भी एक मुस्लिम अखबार जारी कर लिया था।"

पृष्ठ 72

"पहले तो मुंशी ने मामूली तौर से गाँव के मुसलमानों को अखबार सुनाने के लिए बुलाया। नतीजा ये हुआ कि इस मतलब के लिए कईयों ने उसके पास जाना शुरू कर दिया। लेकिन पिछले दो हफ्ते हुए उसने साफ़ मना कर दिया कि ये हिंदुओं के अखबार सुनाने वाले मुसलमान , मुसलमान नहीं काफ़िर हैं।"

"दंगों की आँधी जो बंगाल से चल कर पंजाब की तरफ तेज़ी से बढ़ती चली आ रही थी, उस का असर इस इलाके पर भी होता नज़र आ रहा था। खास तौर से जब से हज़ारा के इलाके में फसाद शुरू हो गए थे, बाबा भाना और खत्रियों की आबादी भी उस से ना वाकिफ़ न थी। लेकिन उन के लिए फिक्र की कोई वजह न थी, क्योंकि वो जानते थे कि इस इलाके की मोहब्बत और अख़लाक फसाद की हवा के झोंके को इधर न आने देगा। मगर अब मुंशी अब्दुल रहमान की सरगर्मियां शुरू हुईं तो कुछ न कुछ मुस्तक़बिल का अंदाज़ा होने लगा था।

जैसे ही बाबे जी के जवाब में मुंशी ने एक घिनौनी और जोशीली आवाज़ में ये बात कही, सारे अखाड़े की उसकी आँखें उस पर जम गईं।"

"बरखुरदार...!" बाबू जी ने अपने कद्र-ओ-इस्तकलाक के साथ जवाब दिया- "मज़हबी मामलों को मैं आप से ज़्यादा समझता हूँ और मैं हर मज़हब की उतनी ही इज़्ज़त करता हूँ जितनी अपने मज़हब की।

मैं तो लीडरों की आदत की बात कर रहा था, अगर सभी लीडर पंडित नेहरू और गांधी जी जैसे हो जाते तो..."

"एक मर्तबा फिर वही आवाज़ आई, जिसने बाबू जी के बयान को दरमियान में ही रोक दिया- "इस का मतलब ये हुआ कि आप के लीडर ..."

पृष्ठ 73

" भले हैं और हमारे बुरे । मैं सच कह रहा हूँ कि ये गांधी ही और नेहरू जो आप लिए फिर रहे हैं, हमारे कायदे-आज़म की जूती का भी मुकाबला नहीं कर सकते। आप जाहिलों को क्या मालूम, इन सियासी बातों का गाँव की चारदीवारी में आप लोग क्या जाने, कि आप के गांधी और नेहरू असल में कौन हैं? अंग्रेज़ के सब से बड़े एजेंट हैं जो..."

"मुंशी...!" किसी पेश आने वाले हादसे से घबराकर चौधरी फज़ल करीम ने कहा- "छोड़ो, इस फुज़ूल बहस को, ऐसा खूबसूरत समां बंधा हुआ है और आप ले बैठे हैं ये फुज़ूल बातें..."

"फुज़ूल बातें...!" मुंशी खामोश होने की जगह और ज़्यादा गर्म जोशी से बोला- "यही तो चौधरी जी! आप गंवार लोगों की नासमझी है। आप के लिए ये फुज़ूल बातें हैं? लेकिन बाहर जाकर देखिए न! दुनिया में क्या-क्या हंगामा हो रहा है। जनाब-ए-आली! बातें करनी आसान हैं। हज़रत-ए-कायदे-आज़म की कुर्बानियों से कौन अनजान है? लाखों का मालिक होकर भी भूखा प्यासा दिन-रात पैदल सफर कर रहा है। इस्लाम की खिदमत के लिए ही वह सफर बर्दाश्त कर रहा है। और असल अंग्रेज़ी की गुलामी ने हम सब की अक्ल पर पर्दा डाल दिया है।"

बूढ़ा दीना दूसरी तरफ से बोल उठा- "मगर मुंशी जी! अब अंग्रेज़ों की हुकूमत जाने वाली है, सुना है जल्दी ही हम लोगों की हुकूमत होने वाली है।"

"इस मुगालते में न रहिये..." मुंशी बोला।

पृष्ठ 74

"ये तो कुएं से निकलकर खड्ड में गिरने वाली बात है। अंग्रेज़ की हुकूमत में सब सुख थे। कोई किसी की तरफ आँख उठाकर भी न देख सकता था, लेकिन जिस दिन इन कांग्रेसियों, हिंदुओं के हाथों में हुकूमत की बागडोर आई, तो याद रखना! मेरी बात, ये मुसलमानों को तो वे रोटी न खाने देंगे, न मुसलमानों की जान महफ़ूज़ होगी। जब इस मुल्क पर पाकिस्तानी परचम लहराएगा, ये कैसे है इस बात का पता कि आज हमारा मज़हब कितने खतरे में है, झगड़ा करना आसान है लेकिन कौम की खिदमत करना मुश्किल है। आज क्या हालत है? भूख और नंगापन ही दरजे में आया है।"

मुंशी की बातों ने लोहड़ी का अखाड़ा ही हिला कर रख दिया। अब से थोड़ी देर पहले लोगों के दिलों से लेकर चेहरों तक जो खुशी बरस रही थी, उसकी जगह नापसंदीदगी और अंदेशे ने ले ली। कुछ बे-एतबारी के जज्बात ने भी सब के दिल उथल-पुथल कर दिए। मुंशी के इस सुलूक (व्यवहार) को नापसंदीदगी की नज़र से देखते हुए, बाबे ने बेइज्जती महसूस की, जिसका कुछ हिस्सा चौधरी फज़ल करीम के इन शब्दों से दूर हो गया- "बात आपकी दुरुस्त है मुंशी जी! लेकिन गुलाम आदमी का ईमान कुछ भी नहीं होता, लेकिन बाबू जी की बात भी नज़रअंदाज़ नहीं की जा सकती। भला आप बताइये कि गांधी जी ने भूख हड़ताल क्यों की थी? और साथ ही ये बात बताइये कि ये बात गलत है जो अखबारों में छपी थी कि जवाहर लाल ने बिहार के हिंदुओं को बम से उड़ाने की धमकी दी थी?"

बाबू जी के कहने का मतलब ये था कि अगर कायदे-आज़म या मुस्लिम लीडर भी इसी तरह अपने इलाकों में दंगों को रोकने की कोशिश करते तो क्यों ये कयामत आती हमारे मुल्क पर..."

पृष्ठ 75

"आप नहीं जानते इन बातों को चौधरी जी!" मुंशी ने उसी तल्खी (कड़वाहट) से कहा- "ये सब इनके आंसू हैं जो बाहर लोगों को यकीन दिलाना चाहते हैं। इन लोगों की चालें इस कदर गहरी हैं कि आप जैसे मोटे दिमाग उन्हें समझ नहीं सकते। फर्ज किया, नेहरू ने अपने भाइयों को धमकियां दीं। मगर मैं पूछता हूँ कि चार-पांच पहले जो वो सरहदी कबीलों के पास क्या लेने गया था? आप को असल राज़ बताता हूँ। कबीलों के पास तो ये बहाना बना गया था कि उन लोगों को तहजीब का सबक सिखाऊंगा। चोरियों और डकैतियों से उन्हें रोकूंगा, उनकी माली मुश्किलात हल करूँगा।" "लेकिन उसका मतलब क्या था, आप को मालूम नहीं? अंग्रेज़ की तरह इन लोगों को रिश्वत दे दे कर मुस्लिम लीग के खिलाफ लड़वाने के लिए तैयार करना। वो अपने आप को बड़ा चालाक बनाता है, लेकिन हमारे लीडरों की नज़रों में वो अभी पैदा ही नहीं हुआ। कायदे-आज़म ने ऐसा जाकर कहा कि नेहरू जी, मुंह की खा कर लौट आए। यही शुक्र कीजिये कि जान बच गई, वरना जिस तरह उनके हवाई जहाज़ पर गोलियां बरसने लगी थीं, अगर कायदे-आज़म वहां जाकर न रोकते तो नेहरू जी की कहीं हड्डी भी न मिलती। वो तो उनके खैरख्वाहों को साथ ले कर गया था, अब्दुल गफ्फार और डॉ. खान को, उनकी भी अकल ठिकाने लग जाती, अगर कायदे-आज़म बीच में सुलह न करा देते।"

"लेकिन कायदे-आज़म उस वक्त थे कहाँ...?" बूटे शाह ने

पृष्ठ 76

"मुश्किल से मुंशी से इतना ही कहा था कि करीब बैठे बाबे ने हाथ के इशारे से रोक दिया और खुद बोले- "मुंशी जी, माफ करना! मेरा मतलब आप ने गलत समझा है। मैं ये नहीं कहता कि हिंदू लीडर सभी नेक और मुसलमान सभी बुरे हैं। मैंने तो ये कहा है कि नेहरू और गांधी अगर बिहार जाकर समझा सकते थे, तो जिन्ना साहब भी अगर चाहते तो मुसलमान इलाकों में इस आग को फैलने से रोक सकते थे। अब आप ये ही देख लीजिये कि हज़ारा में जो झगड़ा हो रहा है, अगर मुसलमान का कोई बड़ा लीडर उसे रोकने की कोशिश करता तो वो रुक नहीं सकता था ...?"

"रुकने/रोकने से कोई फायदा नहीं है, अब मामला एक दो होकर ही रहेगा।" मुंशी बोला।

"किस तरह...?" बाबे ने पूछा।

"इस तरह..." मुंशी बोला- "मुसलमान इलाकों से सभी हिंदू/सिख निकल जाएं और हिंदू इलाकों में कोई भी मुसलमान न रहे। हज़रत कायदे-आज़म ने खुद फरमाया था कि कुदरती तौर पर जब दोनों की हदों (सीमाओं) की आबादी भी एक-सी हो गई, झगड़ा खत्म हो जाएगा।"

"मुंशी जी!" बाबे ने जवाब दिया- "आबादी का तबादाला तो मुसलमानों को महंगा पड़ेगा। इसमें करोड़ हिंदू और सिख एक तरफ और नौ करोड़ मुसलमान दूसरी तरफ होंगे, तो इस तरह एक बड़ी कौम के सामने एक छोटी कौम का आराम से रहना..."

पृष्ठ 77

"...मुश्किल हो जाएगा।"

"मुश्किल हो जाएगा?" मुंशी ने तल्खी के साथ बोला- "लेकिन बाबू जी ! आप ये बात भूल गए हैं कि मुसलमान किसी के दबाव में आने वाले नहीं। एक मर्तबा हमारी कौम पाकिस्तानी परचम के नीचे आ जाए, फिर देखना आप कैसे ये सब इधर-उधर हो जाते हैं। अगर इन सबको औरंग-ज़ेबी ज़माना न याद दिला दिया तो कहना!"

बाबू जी इसके बाद खामोश हो गया। वह देख रहा था कि मुंशी शायद पाकिस्तान बनने से पहले ही गाज़ी का खिताब हासिल करने के लिए तैयार है। कुछ देर तक लोहड़ी का सारा माहौल एक उदास खामोशी में ग़र्क रहा। गोया किसी के पास कहने के लिए कुछ भी न हो, हर शख्स यही सोच रहा था। "कहां से आ गया ये गुनहगार," जिसने लोहड़ी के मज़े को किरकिरा कर दिया ।

"अच्छा! अब बस कीजिये मुंशी जी।" फज़ल करीम ने बे-चैन होकर मुंशी से कहा और फिर सब की तरफ देखकर बोला- "चलो भाई! चलें अब अपने-अपने घरों को।" और आहिस्ता-आहिस्ता सभी तितर-बितर हो गए।

पृष्ठ 78

लोहड़ी का त्यौहार खत्म हुआ और एक नए त्यौहार का इंतज़ार होने लगा- होली का। कब से ये त्यौहार शुरू हुआ और कैसे हुआ? इसकी बाबत अनगिनत कहानियां हैं। लेकिन सबसे ज़्यादा अहमियत जिसे दी जाती है, वह है प्रह्लाद और उसकी बुआ होलिका का वाकया। मशहूर है कि हिरण्यकश्यप जब अपने बेटे प्रह्लाद को मारने में कामयाब न हुआ, तो उसकी बहन होलिका ने यह जिम्मेदारी खुद पर ले ली। कहा जाता है कि देवताओं ने होलिका को यह दुआ दी थी कि उसके शरीर पर आग का कोई असर न होगा। इसलिए वह प्रह्लाद को लेकर जलती हुई आग में लगातार सात दिनों तक बैठी रही। उसका ख्याल था कि इस तरह प्रह्लाद का खात्मा हो जाएगा। लेकिन नतीजा इसके खिलाफ निकला। होलिका जल गई और प्रह्लाद बच गया। यानी सच्चाई की जीत और झूठ की शिकस्त।

पृष्ठ 79

कभी-कभी इतिहास खुद को दोहराता है। शायद 1947 में भी वैसा ही देखने में आया, अगर फर्क देखने को मिला तो सिर्फ यह कि झूठ फतहयाब हुआ और सच्चाई को शिकस्त हुई। ठीक इसी तरह जैसे होलिका प्रह्लाद को लेकर जलती हुई आग में बैठी रही, ऐसी ही तबाही और तबाही का वक्त आया और वह लोग का महफूज़ तरीका था। क्या मालूम था कि इस मर्तबा का ये त्यौहार इन लोगों के लिए खुशियों के बजाय मुसीबत का पैगाम लेकर आएगा। पंजाबियों को रंगों के बजाय खून की होली खेलने पर मजबूर होना पड़ेगा। कौन जानता था कि पंजाब के रहम-दिल लोग, जिनकी बहादुरी और अमन की धमक सारी दुनिया में, मशरिक से मगरीब तक फैली हुई है, इस महीने के खत्म होते-होते इंसान को छोड़कर हैवान और हैवान को छोड़कर दरिंदों की शक्ल इख्तियार कर लेंगे। सुकून के साथ ही आग का दूसरा पासा गुज़र रहा था। जब शहरों से उठकर दंगों के वाक्यात का असर गांवों में, उसके मासूम दिल और दोस्ती पसंद देहातियों पर भी पड़ना शुरू हुआ। बड़े-बड़े शहरों में इंसानी खून की प्यासी यह

वबा का असर सबसे पहले पड़ा। और फिर आहिस्ता-आहिस्ता छोटे-छोटे गांवों को भी अपनी लपेट में लेने शुरू हो गए।

यूं तो कलहरी गांव छोटा सा न था, लेकिन उसका शुमार बड़े गांवों में कभी न किया जा सकता था। इसलिए उस पर यह असर कुछ देर से हुआ।

सदियों से इस गांव में अपनेपन की रिवायत कायम थी। भगवान की यह बेशकीमती देन न सिर्फ इसी गांव के हिस्से में आई थी, बल्कि...

पृष्ठ 80

गांव का रहन-सहन कुछ इस तरह का था कि वहां एक-दूसरे के बगैर गुजर होना मुश्किल था। हर शख्स की जिंदगी एक-दूसरे से जुड़ी थी। मज़हबी अकीदे (धार्मिक विश्वास) के मुख्तलिफ होने के बावजूद इन लोगों में कभी कोई दंगा या फसाद की बात कहीं नज़र न आती थी। अगर कभी कोई अनबन भी हो जाती तो दो-चार रोज़ के लिए कुछ लोगों में बेगानापन आ जाता था, लेकिन वो शरारती लोगों के मुंह मोड़ते ही वो जज्बात फिर भाईचारे में तब्दील हो जाते थे।

फसादात की खबरें काफी मुद्दत तक खबरों की शक्ल में ही आती रहीं। किसी के दिल में मज़हबी तंग-ख्याली का जज्बा न पैदा हुआ था। लेकिन जब मुंशी अब्दुल रहमान और उसके साथियों ने इन खबरों में नमक-मिर्च लगाना शुरू किया तो यहां से हिंदुओं और सिखों में घबराहट के आसार नज़र आने लगे। गांव के कुछ मुस्लिम नौजवान मुंशी के शागिर्द हो गए लेकिन वे अपने सरपरस्तों से छिपकर। जब कभी किसी बड़े-बूढ़े के कान में यह भनक पड़ती कि उनका बेटा या भतीजा किसी शरारती काम में हिस्सा ले रहा है, तो उस घर में एक तरह का झगड़ा पैदा हो जाता था।

रावलपिंडी की तरफ से फसादात शुरू होकर आहिस्ता-आहिस्ता हर तरफ फैलने लगे। ज्यों ही कलहरी के लोगों को फसादों की तपिश करीब आती महसूस हुई, सारा गांव चौकन्ना हो गया। गांव के उम्र-रसीदा और मौज़िज़ (प्रतिष्ठित) मुसलमानों ने पंचायत में जमा होकर और कुरान पर हाथ रखकर कसम खाई कि वे अपने गांव के किसी भी हिंदू या सिखों की तरफ किसी फसादी की

पृष्ठ 81

निगाह न उठने देंगे। उन्होंने आपस में पक्का गठबंधन कर लिया कि अपने खून की आखिरी बूंद तक वे गांव के गैर-मुसलमानों की हिफाजत करेंगे।

लेकिन दूसरी तरफ ये लोग इस खतरे से भी बेखबर न थे जो इन नौजवानों की तरफ से हर वक्त निगहबानी (निगरानी) के लिए जो मुंशी के आगे-पीछे घूमा करते थे। उसके बाद खतरा और भी बढ़ गया जब अकेले मुंशी के सिवाए उसके साथ दूसरे मौलवी ने भी चक्कर लगाने शुरू कर दिए।

खत्रियों के लिए ये वक्त निहायत खतरनाक था। बचाव कि उम्मीद थी तो अपने मुसलमान पड़ोसियों से ही, जिन्होंने मर्दानगी के साथ अपने सीने पर हाथ रखकर कह दिया था कि "घबराओ मत, जब तक हम हैं, आप तक कोई हमारा खात्मा करके ही पहुंच सकेगा"।

पहले तो खत्री बेफिक्री से बैठे रहे जब मुसलमान पड़ोसियों ने उनकी जिम्मेदारी खुद पर ले ली। लेकिन जल्द ही यह खबर भी खाक में मिल गई। उन इलाकों के जिन गांव में अब भी लूट खसोट जारी थी वो ज़्यादा तर दूर से आए हुए बलवाइयों ने की थी ।

इस तरह के वाकयात खत्रियों ने मुंशी से सुनने को उनके लिए हर रोज़ का काम हो गया था। अब उन्हें अपने मुसलमान पड़ोसियों के वादों और भरोसे पर एतबार न रह गया था। लेकिन उन तमाम घरों में एक घर ऐसा भी था जिसका एतबार अभी तक कायम था, जितनी मर्तबा गांव के खत्रियों ने बाबू जी से गांव छोड़ देने के लिए कहा।

पृष्ठ 82

तो बाबू जी ने एक ही जवाब में ला-जवाब कर दिया। "दोस्तो! तकदीर की तहरीर को कोई मिटा नहीं सकता, जिसको राखे राम उसे मार ना सके कोई ..."।

पृष्ठ 83

शाम के सात बजे का वक्त था, उदास, सर्द और खौफनाक साये ने गांव की शोखी का रंग बदल दिया था। हवा में ठंडक बहुत तेज़ थी लेकिन अच्छी नहीं लग रही थी।

बूटे शाह आहिस्ता कदमों से खेतों में से होकर गांव की तरफ लौट रहा था। अगर उस वक्त कोई उसके चेहरे को देखता तो उसे यही महसूस होता कि उसकी टांगें अपनी ताकत से नहीं चल रहीं, बल्कि उन्हें मजबूर किया जा रहा है। गांव की गलियां सुनसान थीं, किसी भी तरफ से किसी के बोलने की आवाज़ न सुनाई दे रही थी। ऊंचे पीपल की टहनियों में से कभी-कभी चमगादड़ों के चिल्लाने की खौफनाक

आवाज़ या आसमान में उड़ते गिद्धों के वज़नी परों की बे-तहरीक फड़फड़ाहट रह-रह कर सुनाई दे जाती थी।

पृष्ठ 84

हवेली के करीब जाकर बूटे शाह के कदम और भी कमज़ोर पड़ गए। पुरानी ईंटों की खस्ता दीवार के ऊपर से अंदरूनी हिस्से पर उसने एक मुख्तसर (संक्षिप्त) निगाह डाली और एक सर्द सांस के साथ हट गया। उसे याद आया कि गुज़िश्ता साल आज ही के दिन जब होली थी तो शाम के वक्त यहां कितनी रौनक थी। गांव के खत्री और मुसलमान नौजवानों ने होली की झांकियां निकालने के लिए बरसों से रुपये यहीं इकट्ठे किए थे। फिर उस पर चौधरी फज़ल करीम ने ऐलान किए गए उन दस रुपयों की याद आ गई जो उन्होंने इस नौजवान को देने का ऐलान किया था, ताकि वह अपना स्वांग (वेशभूषा) ऐसा बनाए कि झांकियों के खत्म होने तक न पहचाना जा सके। यह मकाम हासिल करने के लिए भी कई एक बे-इंतहा कोशिशें थीं लेकिन आखिर में नसीम के भाई अज़ीज़ को ही यह इज़्ज़त हासिल हुई जिसने खुद को साधु की शक्ल में पेश किया था।

गुज़िश्ता साल की चहल-पहल का मुकाबला जब बूटे शाह ने आज के दिन से किया तो उसका दिल को ठेस लगी । आज होली थी जिसकी आमद की खुशी गांव वालों को कतई न थी। हर छोटे-बड़े की ज़बान पर फसादों ही का ज़िक्र था, बाकी सभी कुछ गोया हमेशा के लिए खत्म हो गया हो।

हवेली से चलकर घर तक पहुंचने तक जो तस्वीर बूटे शाह की आंखों के आगे रक़्सां थी, उसने उसकी सांसों को बोझिल कर दिया। वह तस्वीर उसकी धर्म बहन नसीम की थी, जिसके चेहरे की तरफ वह इन दिनों जितनी मर्तबा देखता उसका दिल बैठने लगता ।

पृष्ठ 85

नसीम अब हंसती न थी और बूटे शाह को नसीम की जो चीज़ सबसे अच्छी मालूम होती थी, उसकी हल्की मुस्कान जो शायद उस वक्त उसके होंठों से गुम हो चुकी थी, जब से यूसुफ वाला वाकया पेश आया था। लेकिन जिस दिन से फसादों की नामुरादी की खबरें फैलनी शुरू हुईं, उस रोज़ से नसीम का चेहरा उसे ऐसा महसूस होने लगा गोया उसके गंदुमी चेहरे से ठहरी हुई रंगत कम होती जा रही है और उसकी जगह ज़र्दी (पीलापन) लेती जा रही है। नसीम की कोशिश कि आंखों में उन दिनों बूटे शाह को कभी न खत्म होने वाली नामुरादी की झलक नज़र आती थी, जितनी मर्तबा वह नज़र हटाकर उसकी तरफ देखता उसे महसूस होता गोया नसीम दिल के किसी ना-काबिले-बर्दाश्त बोझ के तले दबी जा रही है। कई दिनों से वह मुसलसल यही सोच रहा था कि नसीम से तन्हाई में मिलकर उसके दिल का राज़ मालूम करने की कोशिश करे। मौका पाकर उसे तसल्ली दे और उसकी ज़हनी तकलीफ दूर

करने की कोशिश करे, लेकिन वह ऐसा न कर सका। आज जब वह घर पहुंचा तो उसके दिल में एक और ख्याल पैदा हुआ कि उसे यह काम अपनी बीवी रमन के सुपुर्द कर देना चाहिए, इस तरह उसका मकसद पूरा हो सकता है। यह सोच कर घर में दाखिल होते ही वह सबसे पहले रमन के पास पहुंचा।

रमन ऊंचे कद और खूबसूरत नक्श वाली औरत थी, जिसकी चौड़ी पेशानी को देखकर उसके दिल में मोहब्बत और नरमी भरे

पृष्ठ 86

जज्बात का अंदाज़ा आसानी से लग जाता है। उसकी उम्र कोई पच्चीस साल है और उसकी शादी हुए दस साल गुज़र चुके हैं, लेकिन उसके जिस्म के हर हिस्से से अभी भी कुंवारापन झलकता है। शायद इसकी वजह यह है कि वह अभी तक बे-औलाद है, कोई बच्चा न होने के गम ने उसकी खूबसूरती को चुरा लिया और ना-उम्मीदी की एक बदली हर वक्त उसके चेहरे पर छाई रहती है। फिर भी उसकी ज़ाहिरी खूबसूरती में कोई फर्क नहीं आया, अपने छोटे-छोटे देवरों और ननदों से वह एक समान सहेलियों की तरह खुल-खेलती रहती है। और यह सब कुछ शायद ना-उम्मीदी की उस बदली से निजात के लिए करती हो, हमेशा जहां तक मुमकिन हो सके वह खुद को उस दर्द से दूर रखने की कोशिश करती है।

बूटे शाह ने खाना खाया, जब खाना खाने के बाद कुल करके वाह तौलिए से हाथ पोंछ रहा था तो रमन ने पूछा:

"क्या बात है, आज खाना बीच में क्यों छोड़ा है?"

"यूं ही, आज भूख कुछ कम थी।"

"नहीं, आप झूठ बोल रहे हैं, आज आपका चेहरा कुछ-कुछ उदास नज़र आता है।"

जवाब में उसे बूटे शाह ने चंद लफ्जों में बता दिया कि उसकी उदासी की वजह वही है जो आजकल हर एक ही उदासी की वजह है। और रमन ने जवाब में बूटे शाह के साथ दुखी होने की रजामंदी जाहिर कर हमेशा बा-उम्मीद रहने की तलकीन करने लगी, तो बूटे शाह ने इस किस्से को दरमियान में ही छोड़ कर दूसरा किस्सा शुरू कर दिया।

पृष्ठ 87

"तेरी बात ठीक है, जो कुछ भी होता है, उसकी मर्जी से होता है, हमें उस पर सबर रखना चाहिए, लेकिन एक दूसरी बात है जिसकी फिक्र न रात भर मुझे खाई जा रही है।"

"कौन सी?" रमन ने जानने की बेताबी जाहिर की।

"नसीम की हालत तो ने कभी देखी है?"

"देख क्यों नहीं रही , मालूम नहीं क्या हो गया है उस लड़की को, दिनों में सूख गई है, पहले जब कभी आती तो हंसी-मज़ाक और उछल-कूद से चैन न लेने देती, लेकिन अब तो गोया उसके मुंह में ज़बान ही नहीं है।"

"तुझे कभी पूछना तो चाहिए था कि उसे क्या तकलीफ है?"

"कई दफा पूछ कर थक गई हूं, वह तो नाक पर मक्खी भी नहीं बैठने देती, जब कभी पूछती हूं, बस यही कहकर टाल देती है, कभी कहती है भाभी तुझे तो वहम की बीमारी हो गई है,

"लेकिन मेरा ख्याल है, ज़रूर..." बात अभी उसकी ज़बान पर ही थी कि बाहर से किसी ने पुकारा, जिसकी वजह से बात अधूरी ही छोड़ कर वह बाहर निकल गया।

पृष्ठ 88

बाहर आकर चार आदमियों को उसने आंगन में खड़े हुए देखा, जिनमें मुंशी अब्दुल रहमान था, एक वही दुबला-पतला कमज़ोर शख्स, जो दाढ़ी से मौलवी नज़र आता था, तीसरा मोची का बेटा इनायत और चौथा बेटा आलम दीन।

"आइये..." बूटे शाह ने मुस्कुराकर कहा।

जवाब में आलम दीन ने पूछा: "ताऊ जी कहां हैं?"

"अंदर लेटे हुए हैं।"

कहते ही वे चारों को साथ ले कर बैठक की तरफ बढ़ा, बैठक का दरवाज़ा अंदर से बंद था और एक कमज़ोर, कांपती हुई और बैराग भरी आवाज़ आ रही थी: "राम-राम कहते रहो धरे रहो मां धीर, काम आप संवारेंगे, रामचंद्र रघुवीर ।"

"साहब सलामत, ताऊ जी!" इनायत ने सबसे आगे बढ़कर कहा।

पृष्ठ 89

बाबा ने आवाज पहचान कर कहा: "आओ इनायत, साहिब सलामत!"

और उसके दूसरे तीनों साथियों को पहचानने की कोशिश करता हुआ वह पूछने लगा:

"ये साथ कौन है तेरे?" इनायत ने सबका परिचय कराया।

बाबा ने सबको इज़्ज़त से बैठाया। बूटे शाह ने आगे बढ़कर स्टूल पर रखी जलती लालटेन की बत्ती ज़रा ऊंची कर दी।

"सुनाइये, कैसे आना हुआ आज?" बाबा ने अपनी सफेद मूंछों में से मुस्कुराहट के साथ पूछा।

"काम तो कोई बड़ा नहीं है ताऊ जीी।" आलम दीन बोला, "वैसे ही हम चल कर सलाम करने आ गए।"

"अच्छा पहले बताइये, दूध का घूंट पिएंगे?"

"नहीं ताऊ जीी!" इनायत बोला, "दाल-पानी कर के आ रहे हैं।"

और फिर अपने असली मकसद पर आते हुए बोला, "ये मुंशी जी और मौलवी जी कुछ बातें आप से करना चाहते थे... मैंने सोचा चल कर मिलवा लाऊं।"

"बड़े शौक से बात कीजिये!" बाबा ने अपना सर उनकी तरफ मोड़ कर पूछा, "हुक्म कीजिये, मौलवी जी।"

बाबा जी शाम से ही कम दिखता थे, इसलिए एक दफा फिर करीब के शीशों में से झांकते हुए बैठे, मौलवी और

मुंशी अब्दुल रहमान की तरफ देखने की कोशिश करने लगे। मौलवी का रंग कुछ स्याही माइल (कालापन लिए हुए) ज़र्द था और कद लंबा था। उसके जिस्म पर गोश्त की जगह हड्डियों का वज़न ही ज़्यादा था। आंखें अंदर धंसी हुई थीं, और होंठों का रंग हल्का स्याह था। उस से ज़ाहिर था कि या तो यह अफीम वगैरह किसी नशे का आदी है या तपेदिक (टीबी) का शिकार। तंग पांचे की चौड़ी-दार पाजामा, उसकी टांगों में ढीला पड़ा था, लंबी मैली और चिकनी अचकन में उसकी हड्डियों का ढांचा जिस्म पर बेमेल नज़र आता था। दाढ़ी सिर्फ ठोड़ी के निचले हिस्से पर ही दिखाई देती थी। बाकी दोनों गालों का चमड़ा तंग और खुरदरा बालों से सफाचट था, और उसकी लंबी गर्दन पर स्याह धब्बे पड़ गए थे। शायद बार-बार खुरचते रहने की वजह से उसकी गर्दन पर मिट्टी मैले रंग की लकीरें खिंच गई थीं, जो गले की कंकठी से दुगुनी उभरी हुई थीं जो बोलने पर अक्सर हिलती हुई दिखाई देती थीं।

"मेरी अर्ज़..." मौलवी साहब की ज़बान से ये अल्फाज़ निकले थे कि मुंशी अब्दुल रहमान बोल उठा।

"हमने आप को इसलिए तकलीफ दी है बाबा जी कि मौजूदा हालात को नज़र में रखते हुए आप को आने वाले खतरों से आगाह कर दें, यह कश्मकश से आप वाकिफ ही हैं, दिन-ब-दिन खतरनाक शक्ल इख्तियार करती जा रही है।"

बाबा जी सुन रहा था, उसके पास जो अफवाहें पहुँच रही थी वह किस हद तक बे-बुनियाद नज़र आने लगीं , लेकिन उसे बताया गया था कि स्कूल का मुंशी

पृष्ठ 91

एक दूसरे मौलवी की मदद से गांव के माहौल में ज़हर घोल रहा है। लेकिन जब आज उसने देखा कि वही मुंशी और मौलवी आने वाले खतरों से उसे बचाने आये हैं, तो बाबा के शुकूक (संदेह) कुछ दूर हो गए।

"आप की बहुत मेहरबानी है मुंशी जी!" एहसान ज़ाहिर करते हुए बोला, "ख्वाह हज़ार खतरे आएं, मुझे मुकम्मल यकीन है कि इस गांव पर फसादात का कोई असर न होगा। फिर जहां आप जैसे खैरख्वाह मौजूद हों, वहां तो हमें दूध पी कर सो जाना चाहिए।"

"आप का ख्याल दुरुस्त है बाबा जी!" मुंशी ने अपने मैले कोट की ऊपरी जेब में ठुंसी हुई पेंसिल के सिरे को नाखून के साथ कुरेदते हुए बोला, "लेकिन देखिये न! फिर भी आप जानते हैं कि मज़हबी मामलात में किसी की तरफ से किसी कदर गलती हो जाए, उसका सुधारना मुश्किल हो जाता है।"

"मैं आप का मतलब नहीं समझा मुंशी जी!" बाबा इस असरार (रहस्यमयी) बात पर बेचैन होकर बोला।

"मतलब साफ है ताऊ जीी!" आलम दीन ने बात का खुलासा करने के ख्याल से कहा, "मुंशी जी सगरा मासी की लड़की की बात कुछ कहना चाहते हैं।"

खाना खाते हुए जैसे दांतों तले कोई कंकड़ आ जाता है, उसी तरह की ना-गवारी महसूस करते हुए बाबा ने पूछा, "सीमा के बारे में?"

"जी हां..." कान में होती हुई खाज को उंगली से दूर करते हुए...

पृष्ठ 92

इनायत ने कहा- "ये तो सारा गांव जानता है बाबा जी कि आप उनकी परवरिश अपनों की तरह कर रहे हैं, लेकिन जहां मज़हब का सवाल आ जाए वहां यही कहा जाएगा- कहीं उनका रास्ता जुदा है और आपका जुदा। क्यों कि हर किसी को अपना मज़हब अज़ीज़ है।"

मुंशी के शुरुआती अल्फाज़ ने जो बेहतर असर बाबे के दिल पर किया था, वह दूर होने लगा। लेकिन असल बात क्या है वह अब तक न समझ पाया। वह चाहता था कि इसे जल्द से जल्द पर्दा हटा दें।

उसके कुछ पूछने से पहले ही मुंशी ने ये कह कर बात साफ कर दी- "साथ ही लड़की की उम्र भी इस बात का तकाज़ा करती है कि वह हम मज़हबों की सरपरस्ती में रहे। फर्क क्या कि आप उनके खैरख्वाह हैं। लेकिन लोगों की ज़बान पकड़ी नहीं जा सकती बाबू जी ! एक बात के साथ दस बातें मिला कर कहते हैं। बस हम आप के पास यही अर्ज़ करने आए हैं कि उन मां-बेटी को आप उनके पर हवाले में भेज दीजिये। आप के सर पर कब तक बोझ बने रहेंगे?"

"मेरे सर पर बोझ?!! बाबे का मुंह खुला रह गया।

"हां बाबू जी !" मौलवी बोला- "मुंशी साहब दुरुस्त फरमा रहे हैं। साथ में जिस काम में भी शर्मिंदगी के अलावा और कुछ न मिले, वो आप को काम करना ही नहीं है।"

"शर्मिंदगी! और मुझे?" बाबे की सांसें तेज़ हो गईं।

"पहले ही क्या कम बातें उठ चुकी हैं बाबू जी !" आलम दीन ने अंगूठे के नाखून को दांतों से काटते हुए कहा- "सारी गांव में नीचा दिखा दिया है इस लड़की ने।"

पृष्ठ 93

"मगर..." बाबू जी घबराकर बोला- "इस लड़की का क्या कसूर है और मेरा..."

बात बीच में ही काट कर इनायत बोला- "कसूर की बात रहने दीजिये बाबू जी ! आप के लिहाज़ से बात बिगड़ी नहीं, वरना- वरना आप के इस शहज़ादे..." और हमला खत्म करते हुए इनायत ने बूटे शाह पर नफरत आमेज़ नज़र डाली।

"कौन सी लड़की..." जुमले का आधा हिस्सा बूटे शाह के हलक में ही था कि बाबा ने काट दिया-

"चुप रह लड़के! तेरा कोई काम नहीं है बीच में बोलने का। जा अपना काम कर।"

फटकार पड़ते ही बूटे शाह ज़हर का घूंट समझ कर गुस्से को पीते हुए वहां से उठकर बाहर चला गया।

बाबे का सब्र बे-काबू हो रहा था। लेकिन बुज़ुर्गों की आन और लड़कों की लिहाज़ न होने दिया। जल्द से जल्द बात खत्म करने की ख्वाहिश से वह बोले।

"चलिये मान लिया। कसूर मेरा मेरे बेटे का है। मगर बराह-ए-करम आप मुख्तसर अल्फाज़ में ये बता दीजिये कि आप क्या कहना चाहते हैं?"

कहते-कहते बाबे की आंखें सुर्ख हो गईं उसे खौफ था कि उसकी ज़बान से कोई ना-जायज़ बात न निकल जाए।

"हम दो बातें चाहते हैं ताऊ जीी!" आलम दीन बोला- "एक तो जिस कदर जल्द मुमकिन हो नहीं कहे कि वो आपका मकान छोड़ कर अपने मकान में चले जाएं और दूसरे नसीम को निकाह के लिए रज़ामंद कीजिये।"

पृष्ठ 94

गुस्से और नफरत भरी सांस छोड़ते हुए बाबा बोला- "अच्छा! अगर आप इसी में राजी हैं तो मैं अभी उन्हें कह दूंगा कि अपने घर चली जाएं। लेकिन दूसरी बात जो निकाह वाली आप ने कही है, उसके साथ मेरा कोई ताल्लुक है। जब कि उनका कोई रिश्ता ही नहीं तो निकाह करने वाले जानें या आप जानें।"

"ये बात नहीं है ताऊ जीी!" इनायत बोला- "ख्वाह आप से उनका कोई भी रिश्ता न हो मगर ये काम बगैर आप की रज़ामंदी के नहीं हो सकता।"

"इसका क्या मतलब है?" बाबा ने गुस्से पर काबू पाते हुए पूछा।

"इसका मतलब ये है..." मुंशी बोला- "कि हम सब सगरा को टोह चुके हैं।"

"उसने क्या जवाब दिया आप को?"

"यही कहती है, बेटी, बाबू जी जानें और उनका काम जानें। मैं उनकी मर्जी के खिलाफ कुछ भी नहीं कर सकती।"

"खैर-- बाबू जी बोला, "ऐसा ही सही। मैं भी कैसे नहीं चाहता कि काम न हो, मेरी भी इसी फिक्र में नींद हराम है कि कौन वक्त होगा जब इस फर्ज़ से फारिग होऊंगा। लड़की को कोई पसंद का मिल जाए तो मैं कहता हूं कि दिन चढ़ने से पहले ये काम कर डालूं। मगर..."

"बात काट कर आलम दीन बोला- "लड़के का तो हम ने इंतज़ाम कर लिया है।"

पृष्ठ 95

"ताऊ जी! सिर्फ आप के कहने की देर है।"

गुस्से का पारा कुछ उतरता हुया महसूस हुया - बाबा बोला- "अगर मेरी रज़ामंदी का आप इस कदर ख्याल रखते हैं तो मुझे लड़का देखने और उसके बारे में कुछ जानने का हक होना चाहिए।"

"बड़े शौक से देखिये!" खुश होकर मुंशी बोला- "लड़का आप कभी भी देख सकते हैं, बाबा जी! यह देखिये।" और उसने करीब बैठे हुए मौलवी की तरफ इशारा किया।

वह अपनी गर्दन के खुरदरे बालों को खुरच-खुरच कर उन पर जमी मैली लकीरों में और इजाफा कर रहा था।

"अल्लाह के फज़ल से..." इनायत ने चुटकी की- "बड़े घर से हैं मौलवी साहब! तालीम याफ्ता होने के साथ-साथ किसी बात की कमी नहीं है इन में।"

"ऐनक के मोटे शीशों में से इस तरह बाबे ने मौलवी को सिर से पांव तक गौर से देखने के बाद, बे-अस्तदगी (अनिच्छा) से सिर हिला दिया।

"उसे खामोश देख कर इनायत ने पूछा- "क्या फैसला है आप का ताऊ जीी!"

बाबे को गोया सांप सूंघ गया। वह मुश्किल से यही कह सका- "अच्छा! गौर करेंगे।"

"गौर करने की इसमें क्या बात है बाबा जी!" मुंशी ने गोया दरख्वास्त की- "तुरत दान महाकल्याण कीजिए और सर से बोझ उतारिये।"

"मुंशी जी!" बाबा कुछ खींच कर बोला- "फिर भी लड़की की जिंदगी का सवाल है, कोई दाल-आटे का सौदा नहीं है, कुछ सोच-समझ लेने दीजिये।"

पृष्ठ 96

मुझे! साथ ही गांवों में और भी लोग हैं जिनकी राय लेनी ज़रूरी है।"

हकारत-आमेज़ (तिरस्कारपूर्ण) मुस्कराहट के साथ मुंशी बोला- "इन दकियानूसी लोगों की बातें देखिये बाबू जी !"

"मगर मैं भी तो इन्हीं दकियानूसी लोगों में से एक हूं, बल्कि कहिये सबसे बड़ा दकियानूस हूं। क्योंकि इस सारे गांव में बड़ा हूं।"

"तो इसका मतलब यह है..." इनायत तलख (कड़वे) लहजे में बोला- "कि आप इस रिश्ते से आप इनकार कर रहे हैं।"

इस मर्तबा बाबा ने अपने गुस्से को काबू में रख सका। बाहर वालों की इज्ज़त उसके लिए ज़रूरी थी, इसलिए वे मुंशी और मौलवी को तो कुछ न कह सका। लेकिन वे दोनों तो अपने ही गांव के लड़के थे। वे कई दफा अपने गालों पर उसके चांटे खा चुके थे। यह भी आज इस कदर गुस्ताख होकर उसके सामने नए पेंतरे बदल चुके हैं।

आंखें निकाल कर वह इनायत पर बरस पड़ा- "सुन ए छोकरे! तू किसके सामने चपड़-चपड़ ज़बान चला रहा है? मार कर चांटा मुंह दूसरी तरफ कर दूंगा। अगर ज्यादा ज़बान चलाई तूने... तो ही बता कि तेरी शादी तेरी मर्जी से हुई थी? तेरी बहन फजाल, जिसकी शादी पिछले साल ही हुई है, क्या उसकी शादी खानदान की मर्जी के खिलाफ नहीं हुई थी? जा! मैंने इनकार किया है। और जो ज़ोर लगता है लगा ले । कल गांव के पंचों को बुला कर सारा मामला उनके सामने पेश कर दूंगा।" मेरे हाथों में जन्म लेकर मेरे ऊपर रूब गाँठने आया है। चला जा यहां से वरना..." कहते-कहते उसे ज़ोर से खांसी आ गई और काफी देर उसकी ज़बान से एक लफ्ज़ भी न निकल सका।

पृष्ठ 97

मौलवी और मुंशी का ख्याल था कि बाबे की फटकार के जवाब में दोनों नौजवान उसे आड़े हाथों लेंगे। लेकिन वे ज्यों के त्यों खामोश रहे। भले ही बाबे ने इनायत फटकारा था, लेकिन मुंशी और मौलवी का ईस बात से अंजान न थे कि असल में यही फटकार उनके लिए है, बेइज्जती की आग से दोनों के दिल कबाब हो गए।

"चलिये आलम दीन जी! आइये इनायत, चल चलें..." मौलवी साहब ने यह कहते हुए अपने कपड़े की तरह झूलता जिस्म लर्ज़ती (कांपती) टांगों पर खड़ा किया और उसके पीछे-पीछे सब बाहर निकल गए।

बाबे की आंखों के सामने इनायत की बोलने की हिम्मत न हो सकी। लेकिन जैसे ही उसकी पीठ बाबे की तरफ हुई और वे दहलीज से गुज़रने लगे, तो उसके मुंह से निकला-

"अच्छा! देखा जाएगा जो होगा।"

पृष्ठ 98

"कुछ दिनों की छुट्टियां लेकर अज़ीज़ अपने गांव में आया। अपने ज़मींदार घरानों को फसादात की लपेट से बचाना, उसका खास मकसद था।

'नसीमा! क्या हुआ है तुझे? तू तो बिल्कुल सूख गई है?' शाम के धुंधलके में घर में कदम रखते ही अज़ीज़ ने सबसे पहला सवाल निहायत फिक्रमंद होकर अपनी बहन से किया।-

'कुछ नहीं भाई जान!' नसीम ने उसकी बात रखने के लिए कहा- 'हुआ तो कुछ भी नहीं, बस यूं ही ज़रा...।' उसने बहाना तराशने की नाकाम कोशिश की।

अज़ीज़ ने अपनी मां की तरफ देखकर पूछा- 'फ़र्ज़ किया आप तो बीमार थीं, मगर इसे क्या हुआ है? पहली जैसी छोड़ गया था , इतना अच्छा चेहरा था इसका। अब तो जिस्म में खून का नाम तक नहीं।'"

पृष्ठ 99

"अज़ीज़ नसीम से सिर्फ तीन-चार साल बड़ा है, वह पूरे ढील-डौल का जवान नज़र आता है, उसका रंग अपनी बहन जैसा ही गोरा, आंखें मोटी और चेहरा पुरकशिश है, जिस पर छोटी-छोटी मूंछें बहुत खूबसूरत दिखाई देती हैं। उसकी आंखों में झिझक और मर्दानापन उसकी चौड़ी पेशानी उसके दिल की सफ़ाई ज़ाहिर करती है।

अगरचे अज़ीज़ ज़्यादा पढ़ा-लिखा नहीं। लेकिन छोटी सी उम्र में ही बाहर निकल जाने और शरीफ लोगों के साथ रहने की वजह से उसकी बातचीत का लहजा पढ़े-लिखों से कम नहीं। उसने खाकी निकर और ब्राउन रंग के फुल स्वेटर पहने रखे थे, गलोए में अंगूरी सुर्ख कोट और सर परकुल्ले वाली संवार कर बांधी हुई पगड़ी भी, जिस के दोनों छोर पूरी शान के साथ लहरा रहे थे।

'नसीमा...!' सगरा ने नसीम को वहां से हटाने के मकसद से कहा- 'जा बेटी! भाई के लिए चाय बना ला।'

नसीम जब ज़नानाखाने (रसोई घर) में चली गई तो सगरा ने तमाम बातें मुफस्सिल (विस्तार) तौर पर अपने बेटे को बतानी शुरू कीं। पहले तो उसकी ख्वाहिश हुई कि कष्ट दायक वाकये को छिपा ले। लेकिन बाद में यह ख्याल करके कि कहीं न कहीं तो यह बात सुन ही लेगा। मालूम नहीं कि कैसी मिर्च-मसाला लगाकर कोई उसे सुना दे और गुस्से में आकर कुछ न करने बैठे। इसलिए बड़े सबर और इस्तकलाल से साफ़ वो वाकया भी बयान कर दिया। सुनकर अज़ीज़ के जिस्म में आग लग गई। लेकिन अभी बहुत कुछ सुनना बाकी था, इसलिए दिल पर काबू करके सुनता रहा। फिर मां ने उसे..."

पृष्ठ 100

"मौलवी की बाबत बताया और साथ ही यह भी कि कल मौलवी उसे शाह का घर छोड़ देने के लिए किस तरह मजबूर कर रहे थे और धमकियां दे रहे थे।

जो कुछ भी अज़ीज़ ने अपनी मां से सुना, ये तमाम बातें सुनकर वह फिर नसीम के इस कदर कमज़ोर क्यों हो गई है, उसकी बाबत पूछने की ज़रूरत न रह गई। एक फिक्र जो उसे यहां खींच कर लाई थी, वो थी बाबू जी को फसादों के खतरे से बचाना।

जब उसने मां की ज़बानी और फिर मुफस्सिल तौर पर यह सुना कि उस स्कूल के मुंशी के गुट ने गांव से कई नौजवानों को चुन लिया है और वो खून खराबे पर आमादा होते हैं, तो वो अपनी मां की बीमारी भूल गया। नसीम के मुस्तक़बिल (भविष्य) और उस मौलवी की जोशीली और धमकी भरी चेतावनियों ने उसे और भी मुतफिक (चिंताग्रस्त) बना दिया। उसके लिए सबसे पहला काम शाह के घराने को गांव से निकाल ले जाना था।

'लाखों लानतें हैं हम पर...' वह तड़प कर बोला- 'जब हमारे होते हुए कोई उनकी तरफ आंख उठाकर देखे... चल मां! हम कुछ दिनों के लिए रावलपिंडी चले चलें। मैं अभी बाबू जी से जाकर कहता हूं, कहिये झटपट तैयारी कर लें। मां! मैं उन्हें यहां नहीं रहने दूंगा। एक मिनट भी नहीं। मैंने एक तरकीब सोची है, मैं उन्हें , मुसलमानी कपड़े पहना कर ले जाऊंगा। फिर चाहे जब तक ठहरे रहें, किसी को पता न लगने लगे।'

'जैसी तुम्हारी मर्जी बेटे...!' मां ने जज्बात से भरभरा कर कहा।"

पृष्ठ 101

"अगर तू इतना बोझ उठा सकता है तो और क्या चाहिए?"

"तो मैं अभी हवेली में जाता हूं।" कहते हुए वह चारपाई से उठ खड़ा हुआ।

"चाय तो पीकर जा।" मां ने रोकते हुए बोली। "थका हुआ आया है।"

"कोई बात नहीं, मां, चाय कहीं नहीं जा रही।"

कहकर वह दरवाजे से बाहर निकल गया। लेकिन उसे जाने के लिए शाह की हवेली तक जाने की ज़रूरत नहीं पड़ी। बाबा खुद अपनी लंबी लाठी की मदद से ज़मीन टटोलते हुए चला आ रहा था।

"बाबा जी सलाम!" कहते हुए अज़ीज़ ने बाबे के सीने से लग गया।

"कौन अज़ीज़? मेरे लाल!" बाबे ने उसे बाजू में कस लिया- जिस तरह कोई नादान बच्चे को चूमता है है, उस का मुंह चूमते हुए बोला- "अरे! फुर्सत मिल गई तुझे नालायक। कितने खत डाले थे तुझे ।"

"क्या करता बाबा जी!" बूढ़े के बाजुओं में अज़ीज़ ने आबे-हयात जैसी पवित्र मोहब्बत का मज़ा लेते हुए कहा- "काम से तो फुर्सत..."

"काम का बच्चा नहीं तो..." ममता भरी धुंधली आंखें उसके चेहरे पर डालकर बाबे ने कहा- "कूएं में पड़े तेरे काम , इधर इस बेचारी की जान पर बनी हुई है। और इस भडुए को "

पृष्ठ 102

"अपने कामों की पड़ी हुई है। खैर, फिर भी शुक्र है कि आ गया।"

अज़ीज़ ने बाजुओं में थामे हुए बाबे को अंदर लाकर बैठा दिया।

सगरा ने सिर का पल्लू नीचे करते हुए कहा- "आइये बाबा जी!

क्या हाल है तेरा बेटी?" बाबे ने अपनी लाचारी ज़ाहिर करते हुए कहा- "मैं तो अब किसी लायक नहीं रहा, दरवाज़े के साथ-दरवाज़ अहि लेकिन यहां तक आने से लाचार हूं। आंखें भी जवाब दे रही हैं।"

"भाई जान !" सगरा ने बाइज्ज़त लहजे में कहा- "आप ने क्यों तकलीफ की इतनी। अज़ीज़ तो आप की तरफ आ ही रहा था। आप के होते हुए मुझे किस बात की फिक्र है भाई! रमन बेचारी आधी-आधी रात ढल जाती है हर रोज़, थोड़ा सा नाखून भी गर्म होता है तो सिर पर खड़ी मिलती है।"

"हरे राम, हरे राम..." बाबा मौज़ू तब्दील करते हुए बोला- "लड़का आ गया है, मेरा दिल चाहता है, बे-ईमान को टिकाऊँ दो चार । मगर तेरे लिहाज़ की वजह से चुप कर गया हूं। यह आज कल के लड़के अपने मां बाप को कुछ समझते ही नहीं। पूछो इस से कि तेरे मां-बाप मरने के करीब हैं और तुझे काम सूझ रहे हैं।"

मोहब्बत भरे लहजे में सुनकर करीब बैठे अज़ीज़ का दिल बाग़-बाग़ हो गया। वह नीचे निगाहों से बाबे की तरफ देखते हुए बोला- "बाबा जी! माफ़ कीजिये, आइंदा ऐसी गलती न होगी।"

पृष्ठ 103

"अच्छा, बहू रानी!" सगरा की तरफ देखते हुए बाबे ने पूछा- "नसीमा किधर है?"

मां की जगह बेटे ने जवाब दिया- "वह बाहर रसोई में है। बाबू जी ! बुला लाऊं उसे?"

"नहीं नहीं।" हाथ के इशारे से रोकते हुए बाबा बोला- "वहीं बैठे रहने दो।"

"क्यों बाबू जी !" तकलीफ के साथ हंसती हुई सगरा बोली- "नसीमा के बारे में कुछ कहना है?"

"हां!" वह बोला- "आना तो मुझे कल रात ही था। लेकिन आंखें तो कुछ करने नहीं देतीं।"

"आप मुझे ही बुला लेते, कितनी तकलीफ हुई होगी आप को!"

"अगली बात।" बाबा बोला- "तेरी तो कोई हालत है बाहर निकलने की।" कहकर वह अपने मकसद की तरफ आया- "वह आए थे तुम्हारे घर... क्या नाम है उनका...?"

"हां, आए थे।" बात समझ कर सगरा बोली- "चोर उचक्के कहीं के ..."

करीब बैठे अज़ीज़ को पूछने की ज़रूरत न थी, क्योंकि वह अपनी मां से सब कुछ सुन चुका था।

"बात तो ठीक है, बहू रानी! मेरे पास भी कल रात आए थे।" बाबा बोला।

"क्या कहते थे?" अज़ीज़ ने तमतमाते हुए सगरा ने पूछा।

पृष्ठ 104

"ओह! कहना ही क्या था? जो तुम्हें कह गए, वही मुझे... बल्कि धमकियां अलग दे गए थे।"

"धमकियां!" अज़ीज़ आपे से बाहर होते हुए बोला- "कैसी धमकियां बाबा जी!"

उसके गुस्से को महसूस करते हुए बाबे ने कहा- "काका! तू बैठ और खामोश रह , ज़्यादा तीन-पांच करेगा तो उसे उठा दूंगा।"

अज़ीज़ खामोश हो गया।

"हां..." सगरा की पसलियों से नीचे सांस बोल रहा था - "क्या कहते थे?"

बाबे ने रात का पूरा वाकया शुरू से आखिर तक सुना दिया।

"बेवकूफ!" "वे कौन होते हैं लाट साहब की तरह मशवरा देने वाले..."

न चाहते हुए भी अज़ीज़ खुद पर काबू न रख सका, बाबे ने फिर डांटा तो वह खामोश हो गया।

"तुम कौन, कहने लगे , ख्वाहमखाह..." सगरा मुश्किल से सांस ले कर बोली- "आए हैं हमारे हमदर्द बन कर, आज तक किसी ने पूछा तक नहीं। अब उनकी मज़हबी हमियत (आत्मीयता) जाग उठी है। भला पूछें उनसे कोई कि लड़की के मां-बाप मर नहीं गए हैं, जो वे लाए हैं लड़के को तलाश करके , शक्ल न सूरत, बंदर की मूरत। दिल तो मेरा उस वक्त चाह रहा था कि अच्छी तरह पल्लू से बांध कर

भेजूं। फिर मैंने सोचा, अंधे कुत्तों को हवा पर भौंकने दो , हमारा करेंगे क्या ? मैं कहती हूं, इस तरह आए थे।"

पृष्ठ 105

"गोया किसी नवाब का परवाना हाथ में पकड़े हुए हैं। कहना न मानोगी तो हम ये कर देंगे, हम वो कर देंगे। पूछे कोई..."

"क्या करेंगे!" अज़ीज़ के दबे हुए जोश की तंदिश (तीव्रता) खैर खिलने वाली थी, बाबे ने आंख के इशारे से घूर कर उसे फिर खामोश रहने पर मजबूर कर दिया।

"अच्छा! यह तो हुई उनकी फ़ज़ूल की बकबक।" बाबा संजीदा होकर बोला- "जो उन्होंने दूसरी बात कही है, घर छोड़ देने के लिए, मुझे तो उसने फिक्र में डाल दिया है। पता नहीं उन्होंने मुझसे क्या देखी है जो ऐसी वाहियात बातें कहने लगे हैं मेरे बारे में, लेकिन किसी के कहने से क्या होता है। अपने दिल की बात कहता हूं बीबी! कभी मज़हब की बात रखो, एक तरफ जिस का जो है उसे मुबारक हो। बाकी रही बात, भली, सुन ले बीबी! रहीम बख्श मर गया है। मैं भी न रहूंगा। मगर मरते वक्त वो जो कुछ कह गया था उसे कभी जिंदगी भर नहीं भूल सकता। बेटा अगर मेरा बेटा है तो वो भी मेरे बाद अपने बाप के अहद को निभाएगा। बाकी यह घर जिसमें तुम लोग रहते हो। अगर कोई कहता है कि यह कहने का घर है, तो यह उसकी गलती है।" "घर तुम्हारा है और तुम ही इसके मालिक हो।"

बाबा कह रहा था- "सच कहता हूं बीबी! अभी तक मेरे सिर से रहीम बख्श का फ़र्ज़ नहीं उतरा। वो उस दिन होगा जब मैं नसीमा को डोली में बैठाऊंगा और यह नालायक लड़का घोड़े पर सवार होगा।"

पृष्ठ 106

"नालायक लड़का!" कहते-कहते प्यार भरी एक नज़र से अज़ीज़ की ओर बाबे ने देखा और अज़ीज़ की आंखें जो रहीम बख्श की याद से नम हो गई थीं, मुस्कुरा उठीं।

सगरा जवाब में कुछ न बोली। बोलना चाहती थी मगर कह नहीं सकती थी। एहसान और इज़्ज़त के मिश्रित (मिले-जुले) थे ये आंसू ...

पिछली कही हुई बातों की तरफ पलटते हुए बाबा दरमियान में बोल उठा-

"हां, मैं कह रहा था, ज़रा सोच कर, ठीक है, मेरा मतलब है, बीबी रानी! भई अगर इन लोगों की तसल्ली इस बात में है कि आप अपने मकान में चली जाएं तो मैं रोकूंगा नहीं, दोनों घर तुम्हारे हैं। उसमें रहो चाहे इसमें। अगर तुम चाहती हो तो आज ही मज़दूरों को बुलवाकर उसकी मरम्मत करवा दूंगा।"

"आप अपनी बात अपनी ज़बान से न कहें बाबू जी !" सगरा के गले से आवाज़ लर्ज़ कर निकल रही थी- "लोगों के दिल में जो आए कहने दीजिये। अगर अपने साया तले लिया है तो अब धक्का न दीजिये। मैं उस साये को छोड़कर न जाऊंगी। ख्वाह कोई मेरे लिए जन्नत के दरवाज़े ही खोल दे। अल्लाह मेरी उम्र भी आपको दे। आप इन बच्चों की खुशियां देखें।"

"अच्छा, बाबा जी..." सिलसिला खत्म होते देख अज़ीज़ फौरन बोल पड़ा- "अब एक, दो बातें मेरी भी सुन लीजिये।"

"तो भी सुना ले ? अगर ऐसी ही तुझे जल्दी है!" बाबे ने... नसीम की तरफ देखा।

पृष्ठ 107

" 'बाबू जी !' आज़िज़ी से अज़ीज़ बोला- 'मेरी कोई बात अब तक आपने नहीं टाली। लेकिन आज मेरी एक और बात माननी पड़ेगी।'

'मानने की होगी क्यों न मानूंगा।' बाबे ने उसे खास तवज्जो देकर उसकी तरफ ताका।

'मेरा ख्याल है अभी चन्द दिनों के लिए हम सभी रावलपिंडी चलें।'

'अच्छी बात है। अगर तू दोनों का खर्च बर्दाश्त कर सकता है। तो और क्या चाहिए मुझे। लेकिन तेरी तनख्वाह तो बहुत थोड़ी है। गुज़र करेगा क्या? और ये बेचारी कभी कहीं आने-जाने के काबिल नहीं है।'

'अकेले नहीं जाएंगे। बाबू जी ! यह बात खत्म करते हुए अज़ीज़ ने कहा- 'आप लोग भी साथ चलेंगे।'

'पगला कहीं का...' तंज़िया अंदाज़ में बाबे ने कहा- 'कहीं लश्कर इकट्ठा कर के ले जाना है?'

'बाबू जी !' अज़ीज़ ने आज़िज़ी से कहा- 'मेरी बात न टालें। मैं आपको छोड़कर नहीं जाऊंगा। चाहे कुछ भी हो जाए। ऊपर से गड़बड़ हो रही है, गांवों में भी फसादात शुरू हो गए हैं। क्या मालूम हमारे गांव में भी कुछ गड़बड़ हो जाए। आपको मज़बूर चलना पड़ेगा। बाबू जी ! मेरे साथ चलें। मेरी वाक्फ़ियत वहां बहुत है, आपको तकलीफ नहीं होगी।'"

पृष्ठ 108

"मैं आप तीनों को मुस्लिम लिबास में ले जाऊंगा।'

'जीता रह बेटा।' उसकी पीठ थपथपाते हुए बाबा जी बोले 'हम बूढ़ों की लाठी अब तुम ही पकड़ोगे। और तेरी ये बीमार मां क्या घर से निकलने के काबिल है? मगर देख बेटे! नसीब में जो कुछ लिखा है वो तो बहरहाल होकर रहेगा। मैं तेरी बात सुनकर निहाल हो गया हूं बेटे... लेकिन तू ही बता इन बूढ़ी हड्डियों को कहां-कहां लादे फिरेगा? अगर मान जाएं तो अपने भाई भावज को कुछ दिनों के लिए शहर ले जा और साथ ही साथ नसीमा को भी शहर दिखला।'

'और आप भाई जी ?' सगरा पर गोया एक-एक लाठी की चोट हुई। उसने बेकरार होकर पूछा।

'मुझे यहीं रहने दो।' बाबा मुकम्मल एतमाद व इत्मीनान से बोला- 'चार रोज़ा जिंदगी है, यहीं गुज़ार लूंगा। इसी गांव में पैदा हुआ था, यहीं मेरी मौत हो , यही मेरी दिली मुराद है । ।'

'डूब कर मर न जाएँ हम।' सगरा बोली- 'घर की बरकत छोड़कर हमें क्या करना है जाकर। भला यह भी कोई बात है कहने की।'

सिलसिला गुफ़्तगू न मालूम कहां पहुंचा कि बाहर गली से आते शोर ने सब को अपनी तरफ मुतवज्जे कर लिया।

'एक साथ कई आवाजें आईं, -----साथ ही गांव पर हमला हो गया। लूटमार... कत्ल...'

सगरा जो पहले ही दौरे से निढाल थी, इस आवाज को सुनते ही खड़ी हो गई और फौरन बाद उखड़े हुये हुए सांस लेती हुई चारपाई पर लेट गई।"

***

पृष्ठ 109

"देखते ही देखते जंगल की आग की तरह फसादात की आग हर सिम्त (दिशा) धड़क उठी। हिंदुओं और सिखों की तादाद मुकाबले में आटे में नमक के बराबर थी। इसलिए उन लोगों की बड़ी-बड़ी हवेलियां और भरी हुई दुकानों को लूट लिया जाता, फिर आग लगा दी जाती। नौजवानों को मौत के घाट उतार दिया जाता और नौजवान लड़कियों को अगवा (अपहरण) कर लिया जाता, जिस तरफ देखो हाहाकार मचा था।

गांव तो अभी तक महफ़ूज़ (सुरक्षित) था, लेकिन कब तक महफ़ूज़ रह पाएगा किसी को कोई भरोसा न था। जबकि आसपास के गांवों के रहने वाले लोग टिड्डी दल की तरह मंडला रहे थे और खून की होली खेल रहे थे।

रात तो खैरियत से गुज़र गई। गांवों के मुसलमानों ने रात भर घरों के मकानों पर पहरा दिया। लेकिन दिन चढ़ते-चढ़ते खतरे में इज़ाफ़ा (वृद्धि) हो गया।"

पृष्ठ 110

"खबरें पहुंचने लगीं कि कसबा फतेहजंग की सिम्त (दिशा) से कई हजार लूटेरों का एक बहुत बड़ा गिरोह उस तरफ बढ़ चला आ रहा है, जिन्होंने आधे रात के वक्त चक्री, ढेरी, कोल्हड़ वगैरह कई दर्जन गांवों को लूटने का प्रोग्राम बनाया है। गिरोहों के पास न सिर्फ सौ से ज़्यादा बंदूकें हैं, बल्कि मिलिट्री की एक टुकड़ी भी उनकी मदद कर रही है।

गांव के मुखिया चौधरी फज़ल करीम और उसके साथियों को जब अपने पड़ोसियों का कोई दूसरा रास्ता नज़र न आया, तो उसने यह फैसला किया कि उन्हें किसी महफूज़ (सुरक्षित) कैंप में पहुंचा दिया जाए। दंगा शुरू होने के बाद इस तरह के कैंप कई जगह कैंप बेशुमार हो गए थे।

वे लोग जब बाबू जी के घर पहुंचे तो मालूम हुआ कि बाबू जी सगरा के मकान पर हैं। वहां जाकर उन्हें कुछ और देखने को मिला, सगरा बेहोश पड़ी थी और बाबू जी उसे होश में लाने की कोशिश कर रहे थे, बूटेशाह और उसकी बीवी रुक्मन, अज़ीज़ और नसीम, बीमार सगरा की चारपाई को घेरे खड़े थे, सगरा अपनी जिंदगी की आखिरी घड़ियां गिन रही थी।

काफी देर तक सख्त मुबाहसा (बहस) होता रहा, लेकिन बाबू जी और उसका घराना अपनी जिद पर अड़ा रहा और उन लोगों की किसी बात से नहीं माने। उन लोगों का बार-बार यही कहना था कि यह कैसे हो सकता है कि अज़ीज़ की मां को बिस्तर-ए-मर्ग (मृत्यु शैया) पर छोड़कर वे गांव से चले जाएं।

पृष्ठ 111

आखिर चौधरी ने अपने साथियों को मुनासिब हिदायत देकर गांव में भेज दिया, ताकि खतरे के घिर आने का सामान न हो और वे उनकी मदद करें। वक्त कम था और खतरा बढ़ रहा था, बाबू जी और उनके घर वालों को यहां से निकलना ही होगा, चाहे वो कितनी ही रुकावटें डालें। चौधरी और उसके साथियों ने यह फैसला कर रखा था।"

***

पृष्ठ 112

"शाम होते-होते सहां नदी के किनारे आबाद छोटा सा गांव एक छोटे से रिफ्यूजी कैंप में तब्दील हो गया। गांव भर के खत्रियों का सारा सामान बांधकर और लादकर गुलाब सिंह की धर्मशाला में लाकर रख दिया गया। और साथ ही हिंदू घरों का भी।

पत्थर की ऊंची दीवारों और मज़बूत दरवाज़ों की वजह से यह मकाम दूसरे मकामों की बनिस्बत कहीं ज़्यादा महफूज़ था।

रात होते-होते करीब के गांवों के बहुत से हिंदू घराने भी वहां पहुंचे। शायद इस ख्याल से कि एक तो यहां के मुसलमान हिंदुओं की हिफाज़त का अहद (वादा) कर चुके हैं। दूसरा यह कि यह धर्मशाला हर लिहाज़ से महफूज़ है, उन्हें भी यह पता चल गया था कि चक्री के गांवों में उसकी हिफाज़त के लिए मिलिट्री भी आ चुकी है।

सुबह से ही चौधरी ने अपने लड़कों को एक अच्छी घोड़ी देकर..."

पृष्ठ 113

"मिलिट्री कैंप में भेजा ताकि उन लोगों को गांव से निकालने के लिए कुछ इंतज़ाम हो सके। इसके अलावा चौधरी ने एक सियासी चाल चली जो निहायत कारगर साबित हुई। गांव के चंद लोगों के ज़रिये उसने इलाके में यह अफवाह फैला दी कि चक्री के पास मिलिट्री के नौजवान आ पहुंचे हैं। जिसका फायदा यह हुआ कि दूसरी रात भी खैरियत से गुज़र गई और लुटेरों ने इधर का रुख न किया, चूंकि यह अफवाह गलत थी इसलिए इसका असर पायदार न रह गया।

गुलाब सिंह की धर्मशाला में कुल मिलाकर तकरीबन दो सौ मुहाजिर (शरणार्थी) हो चुके थे, जिनके खाने के लिए गांव वालों ने काफी राशन जमा कर रखा था। जब लोगों ने सुना कि लेने के लिए मिलिट्री ट्रक आ रहे हैं तो सबके चेहरों पर उम्मीद की किरण दौड़ गई, लेकिन उसके फौरन बाद एक खबर ने उन्हें ना-उम्मीद कर दिया कि लुटेरों के बड़े गिरोह इसी तरफ बढ़े चले आ रहे हैं।

सगरा की हालत लम्हा-ब-लम्हा गिरती जा रही थी। उसको लाकर चौधरी के घर में रखा , नसीम का कदम एक मां की चारपाई के करीब और दूसरा धर्मशाला में रहता जहां रिफ्यूजी ठहरे हुए थे। अपने धर्म पिता के हुक्म के मुताबिक दोनों भाई और बूटे शाह उनकी खिदमत में जुटे हुए थे। बाबू जी का काम यह था कि वह बारी-बारी सब की परेशानी हाल और ना-उम्मीद मर्द-औरतों के पास जा बैठता और उन्हें तसल्ली देता।"

पृष्ठ 114

और सलाह से नसीहतें भी करता । अब जबकि मौत का खतरा सिर पर आ चुका था, उसका ख्याल में सब से मुनासिब काम यही था कि इन लोगों को सुरक्षित निकाल सके।

सुबह से दोपहर, फिर शाम हुई। लेकिन अभी तक किसी भी बस या ट्रक की आवाज़ सुनाई न दी। गुरदुवारे के ऊपर की छत पर चढ़कर बंदूकों के साये में छिपे हुए लोग रह-रहकर सड़क की सीध में झांक रहे थे। लेकिन सहां (नदी) की एक लंबी और फैली लकीर के अलावा उन्हें कुछ भी नज़र न आता था।

आज की रात एक खौफनाक और खतरनाक रात समझी जा रही थी। क्योंकि ढंडियाल की तरफ से आ रहे लुटेरों के बड़े गिरोहों के आने की उन्हें खबर मिल चुकी थी। और सबका ख्याल था कि अगर इससे पहले मिलिट्री की मदद न पहुंची तो इन बेनसीबों को इस मुसीबत से कोई नजात न दिला सकेगा।

रात के ग्यारह बजे तक बाबू जी , बूढ़े शाह और अज़ीज़ सगरा की चारपाई को घेरे रहे लेकिन उसकी हालत में कोई खास सुधार न हुआ। रात का आखिरी हिस्सा सब ने जागकर काटा। गांव के पचास-साठ मुसलमान सारी रात कुल्हाड़े लिए घरों के और खेतिहर (खेतों के) मकान के आसपास पहरा देते रहे। वह रात भी खैरियत से गुज़र गई और सुबह होते ही गांव के लोगों के कानों में एक ऐसी आवाज़ आई जिससे उन सबकी जान में जान आ गई। यह मिलिट्री दलों की आवाज़ थी। फिर क्या था सारा गांव, क्या खत्री ..."

पृष्ठ 115

"और क्या मुसलमान गांव से बाहर उठकर आ गया। सहां के पास सड़क पर खड़े हुए मिलिट्री के चार-चार सिपाहियों के साथ तीन ट्रक मौजूद थे।

अफसर ने गांव वालों को कहा- 'जल्दी से जल्दी आ जाइए, जितने भी आदमी आ सकते हैं।'

गुरदुवारे में हलचल फैल गई, सब जल्दी-जल्दी बिस्तर और सामान समेटने लगे। उधर चौधरी फज़ल करीम के घर में भी यही हालत थी, चौधरी और उसके साथी जल्दी से बाबू जी का सामान उठाकर सड़क की तरफ ले चले। लेकिन जैसे ही बाबू जी सगरा के पास से उठकर बाहर निकले उसने हाथ के इशारे से सब को रोकते हुए नौजवानों के सिरों से ट्रंक और गठरियाँ उतरवा लीं।

'क्यों बाबू जी ?' चौधरी ने आगे बढ़कर पूछा- 'ले जाते क्यों नहीं इन को? उधर जगह रुक जाएगी, अगर ढील की तो?'

बाबू जी ने बोला- 'चौधरी जी! इन सबको सवार हो जाने दीजिये, बाद में देखा जाएगा।'

'क्यों बेवकूफों जैसी बातें कर रहे हैं आप?' चौधरी ने जवाब दिया- 'सारे आदमी कहीं इन तीनों ट्रकों में समा सकते हैं?'

'तो फिर हम अभी नहीं जा सकते।'

'क्यों बाबू जी ?'

'पहले जब तक वे भी नहीं चले जाते, तब तक हम में से..."

पृष्ठ 116

"...कोई नहीं जाएगा। और दूसरी तरफ सगरा आखिरी सांसें ले रही है। चौधरी जी! आप लड़कों को फौरन उन लोगों की मदद के लिए भेज दीजिये, जितने ज़्यादा से ज़्यादा आदमी चढ़ाए जा सकते हैं चढ़ा दिए जाएं।"

तीनों ट्रक भर गए। नीचे सामान, इधर सवारियां। लेकिन दो सौ सवारियां तीन ट्रकों में कैसे आ सकती थीं। बड़ी मुश्किल से ठूंस-ठांस कर यहां तक कि कई तगड़े रिफ्यूजी ट्रक के गार्डों पर लटक कर खड़े हो गए। हर एक यही कोशिश कर रहा था कि वह किसी तरह अपने सामान और अपने गिनने के साथ चढ़ जाए।

बड़ी गड़बड़ हुई। और आखिर यही हुआ कि जो ताकतवर थे वे किसी तरह घुसकर सवार हो गए और कमज़ोर चढ़ने से रह गए। हालांकि जमादार ने यकीनी दिलाया कि उसके पीछे-पीछे दो और ट्रक आ रहे हैं जो घंटे भर में यहां पहुंच जाएंगे, लेकिन इतना सब्र किसे था जबकि जानते थे कि घंटे में ही कयामत हो जाने का अंदेशा है। ट्रक चले गए और बाकी रिफ्यूजी धर्मशाला (गुरदुवारे) की चारदीवारी के पीछे बैठकर इंतज़ार करने लगे।

****

पृष्ठ 117

सुनसान और स्याह (काली) खौफनाक रात, बादलों से घिरे आसमान और थरथराने वाली तेज़ आंधी की रफ्तार से चल रही थी। बाबू जी के बागीचे में कई इंसानी साये हिल रहे थे, उनमें रह-रहकर फुसफुसाहट भी हो जाती लेकिन होशियारी के साथ। वहां लालटेन की रोशनी भी थी लेकिन उसकी बहुत मद्धम (धीमी) थी। यहां रोशनी की मौजूदगी गोया मौत को दावत देने के बराबर था। उन्हीं

लोगों में बाबू जी , सगरा का कुनबा, और अज़ीज़, नसीम, चौधरी और लोग भी मौजूद थे। चांद का नन्हा सा टुकड़ा अभी तक आसमान पर बाकी था, जिस के गुम होने में देर न थी। और उस के डूबने पर यह काफिला अपनी मंज़िल की तरफ रवाना होने वाला था। वरना यह खौफ था कि ये लोग इस इलाके के लुटेरों की नज़रों में पड़ जाएं तो जान की खैरियत नहीं।

पृष्ठ 118

काफिले से तकरीबन दो गज़ के फासले पर कुछ लोगों में बहस-मुबाहसा (वाद-विवाद) हो रहा था। वे फुसफुसाती आवाज़ में बोल रहे थे।

"तो ठीक है नसीम" चौधरी समझाने की कोशिश कर रहा था। "अगर इतनी बात है तो इस में तेरी ही भलाई है।"

जवाब देने के बजाय नसीम सुबकियां भरकर रोने लगी। बहन के इस गम से मुतासिर (प्रभावित) होकर अज़ीज़ ने जवाब दिया।

"चाचाजी! अब हमें न रोकिए। मां को खुदा के घर जाना था तो चली गई। बाकी रहा सवाल जनाजे का तो कंधा देने के लिए आप मौजूद हैं। लेकिन ये सोचिये... खुदा करे अगर राह में बाबू जी के घर वालों को कुछ हो गया तो...?"

"मैं यह नहीं कहता बेटा" चौधरी बोला। "तुम्हें तो मैं नहीं रोकता, मगर मैं चाहता हूं कि नसीम..."

नसीम एकदम बोल उठी। "मेरी फिक्र न कीजिये चाचाजी! और रावलपिंडी कुछ दूर नहीं है।"

आखिर चौधरी को हार माननी पड़ी। आसमान में चांद का आखिरी टुकड़ा भी गुम हो चुका था। घना अंधेरा छाते ही सफर की तैयारी शुरू हो गई। फालतू सामान वहीं धर्मशाला में ही छोड़ दिया गया। ज़रूरी सामान जिसे आसानी से साथ ले जाया जा सकता था, कंधों पर उठा लिया गया। फिर भी सब के पास अपने दूना-तिगुना सामान था। इंसान अपने मोह को किस तरह छोड़ सकता है? जिन चीज़ों को वह उम्र भर जुटाने मे लगा रहा हो , उन्हें छोड़ते हुए...

पृष्ठ 119

"किस कदर दुख होता है इसका अंदाजा आसानी से लगाया जा सकता है। उन लोगों की इस खतरनाक हालत को देखकर गांव के चंद नौजवानों ने फैसला किया कि वे अपने अज़ीज़ों को शहर के सरकारी कैंप में पहुंचा कर लौटेंगे। इसलिए उन्होंने अपना सामान अपने कंधों पर उठा लिया। बाबू जी ने इस गुफ़्तगू में कोई हिस्सा नहीं लिया। वे बिल्कुल किनारे बैठे लगातार यही शब्द गुनगुनाते रहे:

'राम राम कहते रहो, धरे रहो मन धीर , काम आप संवारेंगे, रामचंद्र रघुवीर '।

और उनकी यह महवियत (तल्लीनता) उस वक्त खत्म हुई जब नसीम ने आकर उनका कंधा झिंझोड़ते हुए कहा: 'चलिए बाबू जी !'

कुछ देर यही बहस होती रही कि किस रास्ते से जाया जाए। पहले फैसला किया गया कि रावलपिंडी वाली सड़क पर चला जाए। लेकिन इस रास्ते की बनिस्बत फतेहजंग का रास्ता ही महफूज़ समझा गया। एक तो इस रास्ते में ऊंची-ऊंची पहाड़ियां और गहरे खंडों की आड़ है और दूसरे यह ख्याल था कि सब तरह से मुमकिन हो सके सुबह से पहले उन्हें चिल्ले नाम के कस्बे में पहुंचा दिया जाएगा। जहां एक छोटा सा सरकारी रिफ्यूजी कैंप था और साथ ही थाना भी था। इसके अलावा उन्हें यह भी मालूम था कि इस इलाके में रहने वाले हिंदू और सिख पहले ही बड़ी तादाद में जमा हो रहे हैं और उन्हें निकालने के लिए मिलिट्री का खास इंतज़ाम है।"

पृष्ठ 120

" बारह या साढ़े बारह बजे का वक्त होगा जब चलने के लिए तैयार हो चुके गांव से निकलकर अभी कुछ दूरी ही बढ़े थे कि उन्हें कुछ फासले पर इंसानी साये नज़र आए। पहले तो उन्हें दुश्मन होने का शक हुआ, लेकिन करीब आने पर मालूम हुआ कि ये अपने ही आदमी हैं। चौधरी फज़ल करीम अपने सिर पर ट्रंक उठाए हुए था।

'लीजिये बाबू जी !' आगे आकर चौधरी बोला। 'आप के ज़ेवर और नकदी वगैरह भी मैंने ट्रंक में बंद कर दिए हैं, कुछ कीमती कपड़े भी हैं।' फिर वह नसीम से बोला, 'यह छोटा ट्रंक तुम्हारा है, इसे भी उठा लाया हूं। खोलकर मैंने नहीं देखा, मेरा ख्याल है कपड़े वगैरह कुछ इसमें होंगे।'

और रोटियों की पोटली अज़ीज़ के हाथ में देते हुए कहने लगा, 'इस वक्त और तो कुछ बन नहीं सका, सिर्फ पांच-दस परांठे और थोड़ी सी शक्कर बांधी है, मैंने सोचा शायद रास्ते में खाना न मिले।'

उसके बाद अपने बेटे फतेहजंग से कहने लगा, 'फतेहजंग! बाबू जी के ट्रंक का ख्याल रखना, इसमें कई हज़ारों का माल है।'

इस हिदायत के बाद बड़ा ट्रंक फतेहजंग ने अपने सिर पर उठा लिया और छोटा नसीम वाला दूसरे ने। चलने वाले उठ खड़े हुए थे। लेकिन इधर बाबू जी और चौधरी के बाज़ू एक दूसरे के साथ इस तरह जकड़े हुए थे कि छूटने का नाम ही न ले रहे थे। बड़ी मुश्किल से चौधरी के मुंह से यह शब्द निकले..."

पृष्ठ 121

"'अच्छा जाइये, अल्लाह के हवाले, खुदावंद करीम चाहे तो एक बार फिर हम फिर मिलेंगे।' उनके इन शब्दों को सुनकर सब की सिसकियां फूट पड़ीं।"

****

पृष्ठ 122

"रात आधी बीत चुकी थी और आधी बाकी थी। आसमान पर छाई हुई घटाओं ने रात के अंधेरे को और भी गहरा कर दिया था। ठंड के साथ हल्की-हल्की बूंदें भी पड़ने लगी थीं। चक्री से निकलकर ये शरणार्थी अपने संरक्षकों के घेरे में चलते हुए तंग सड़क पर चलने लगे। उनके साथी रुक-रुक कर इधर-उधर का जायजा ले लेते थे। किसी को कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा था। उन्हें पता था कि रात के समय लुटेरों का खतरा होता है। वे बार-बार रुक जाते और जब उन्हें अच्छी तरह तसल्ली हो जाती कि खतरे की कोई बात नहीं है, तो वे आगे बढ़ते।

बाबू जी की तकलीफ उस समय सबसे ज़्यादा असहनीय थी। एक तो आँखों से कुछ दिखाई न देने की वजह से वे ठोकरें खाते हुए चल रहे थे। दूसरे, अत्यधिक ठंड होने की वजह से उनके पैर उनका साथ नहीं दे रहे थे।

पृष्ठ 123

नसीम ने अपनी छोटी सी गठरी एक दूसरे व्यक्ति को पकड़ा दी और खुद बाबू जी के कंधे पर हाथ रखकर चलने लगी। दूसरी तरफ अज़ीज़ ने उन्हें सहारा दिया।"

"सभी खामोशी से चले जा रहे थे, बोलना या खांसना मना था। अभी दो मील का सफर भी तय न हुआ था कि फैली हुई रोशनी ने सबकी जान सुखा दी, सबको यकीन हो गया कि पीछे से लुटेरों का गिरोह आ रहा है। उस समय वे लोग जहां से गुज़र रहे थे, वहां करीब ही एक ऊंची चट्टान थी। और कोई सूरत न देख सबको उसके पीछे छिप जाने का फैसला किया और वे सड़क छोड़कर उसी तरफ चल पड़े। चट्टान सड़क के बिल्कुल करीब थी, जहां बैठकर सड़क का एक हिस्सा देखा जा सकता था।

उधर कदमों की आवाज़ें बराबर करीब आती जा रही थीं। अंधेरे में ही अंदाज़ा लगा लिया गया कि आने वालों की संख्या बहुत ज़्यादा है। कुछ देर बाद उन्हें अंधेरे में एक बादल जैसा कोई चीज़ दिखाई देने लगी। तो उनमें से एक को ख्याल आया कि ये चोर-लुटेरे नहीं हैं। क्योंकि न तो उनके पास मशालें थीं और न ही लुटेरों की तरह शोर-गुल मचा रहे थे। जब वे लोग और करीब आए तो सबको यकीन हो

गया कि वे भी उनकी तरह ही शरणार्थी हैं। वे लोग ठीक उस चट्टान के करीब थे कि एक आवाज़ सुनाई दी।"

पृष्ठ 124

"'तो कुछ फिक्र न कर मासी ! उनकी ऐसी-तैसी, जो आप की तरफ आंख उठाकर भी देखे'।

जवाब में एक धीमी सी आवाज़ आई, 'मालूम तो ऐसा हुआ कि हमारे आगे-आगे कोई समूह गुज़र रहा है, पता नहीं किधर गायब हो गया'।

'खौफज़दा होने की ज़रूरत नहीं' - कहते हुए उस पार्टी के लोग भी चट्टान के पीछे से निकल आए और सड़क पर आ गए। जैसे ही दूसरी पार्टी ने जिसमें महिलाओं की संख्या ज़्यादा थी, उन्हें देखा तो वे चीखने-चिल्लाने लगीं। लेकिन फतह और दो-तीन आदमियों ने उन्हें पूरी बात बताई तो उनकी जान में जान आई। दोनों पार्टियां अब मिलकर चलने लगीं। उधर की पार्टी ने देखा कि उनकी संख्या लगभग तीस थी, जिसमें लगभग दस औरतें और नौजवान लड़कियां, दस के करीब बच्चे और पांच-छह पुरुष थे, जिन्हें चारों तरफ से बारह सशस्त्र मुसलमानों ने घेर रखा था। दोनों ने एक-दूसरे को पहचान लिया। यह काफिला सहाल से आया था। चक्री के संरक्षकों ने जिस तरह गांव के मुसलमानों ने भी उन्हें सुरक्षित स्थान पर पहुँचाने के लिए अपनी हथेलियों पर जान रख रखी थी।

मिला-जुला सफर दोनों काफिलों के लिए खुशगवार और सुकून भरा महसूस होने लगा। खतरा इस वजह से भी कम हो गया था कि वे खतरे के स्थान से कुछ आगे निकल आए थे। दूसरी बात यह कि वे सब मिलकर तीस के करीब लठैत उनके साथ थे"।

जो किसी भी लुटेरे गिरोह का आसानी से मुकाबला कर सकते थे।

अमावस्या की रात होने के कारण रात लगभग पूरी तरह से काली थी। ऊपर से बादलों के छा जाने की वजह से रात और भी घनी हो गई थी। काफिला आगे बढ़ रहा था और उसके रक्षक पूरी सतर्कता से इधर-उधर सावधानी से कदम बढ़ा रहे थे। महिलाएं और बच्चे बुरी तरह थक गए थे और नसीम की इच्छा थी कि सामने वाली पहाड़ी की गुफा में पहुंचकर वे आराम कर लें। यह गुफा काफी लंबी और चौड़ी थी। इसमें पानी के झरने भी थे; वैसे गुफा में ऐसी जगहें भी थीं जहां आदमी को रात के अंधेरे में दिन में भी तलाश करना मुश्किल था।

पहाड़ी जब आधे मील से कम रह गई, तो बारिश ने जोर पकड़ लिया। देखते ही देखते बारिश तेज होने लगी, बादल नीचे झुक आए थे जिनकी वजह से अंधेरा और गहरा हो गया था। कदमों में तेजी आ गई, जिस आदमी में चलने की ताकत न थी, उसने भी दौड़ना शुरू कर दिया। लेकिन मुसीबत यह थी कि उन पर सामान का बोझ था, जिससे दौड़ना मुश्किल हो रहा था। कमजोरों की पोटलियां हाथों से छूटने लगीं, इस तरह गिरते-पड़ते वे आगे बढ़ रहे थे। काफिले में से एक डरी हुई आवाज आई:

126

"वह देखो, सामने पहाड़ी के किनारे से कौन आ रहे हैं?"।

सबकी नजरें उस तरफ गईं, जिधर इशारा किया गया था। कुछ भी साफ नजर नहीं आ रहा था, वे बिजली के चमकने का इंतजार करने लगे। बिजली चमकी तो सबकी निगाहें उसी तरफ थीं, जहां एक धुंधली और टेढ़ी-मेढ़ी लकीर दिखाई दे रही थी।

एक और आवाज आई: "लुटेरों की एक बहुत बड़ी कतार है"।

यह सुनकर सब पर घबराहट छा गई, हालांकि रक्षक उन्हें ढांढस बंधा रहे थे, लेकिन यह बेकार था। रक्षकों की हिम्मत भी हारने लगी, इसमें शक न था कि दोनों गांवों के इन रक्षकों ने दिल-ओ-जान से अपने पड़ोसियों को खतरे से बचाने का वादा किया था। लेकिन दूसरों की जान बचाने के लिए खुद को कुर्बान कर देने की हिम्मत किसी-किसी में ही होती है। फिर भी, लुटेरे रक्षकों के उतने बड़े दुश्मन नहीं थे जितने कि वे। एक बार फिर बिजली चमकी और उसके उजाले में साफ दिखाई दिया कि पहाड़ी के ऊपर से गुजर रही यह लंबी कतार लुटेरों के अलावा किसी की नहीं थी। सभी के कंधों पर लाठियां, बरछियां और कुल्हाड़ियां थीं, ऐसा अंदाजा हो रहा था।

127

बचाव की एकमात्र सूरत यही थी कि किसी तरह गुफा की गहराई तक पहुंचा जाए। सभी को यह तरकीब डूबते को तिनके के सहारे जैसी महसूस हुई। वे जानते थे कि अगर लुटेरों ने उन्हें देख लिया तो वे पीछा किए बिना नहीं छोड़ेंगे, इसलिए उन्होंने गुफा की तरफ भागना शुरू किया। हांफते-हांफते आखिर वे किसी तरह गुफा तक पहुंच गए।

नसीम का सबसे पहला काम यह था कि वह गठरियां जो अज़ीज़ ने उतारकर अपने सिर पर उठा ली थीं, उन्हें रखा और बाबू जी का हाथ पकड़कर खींचती हुई गुफा में दाखिल हो गई। यह जल्दबाजी शायद इसलिए करनी पड़ी कि लंबे सफर के बाद बाबू जी की तबीयत घबराई हुई थी। शरीर भी गर्म हो रहा था और उसे फिक्र थी कि बाबू जी कहीं रास्ते में बीमार न पड़ जाएं। गिरते-पड़ते, लड़खड़ाते

कदमों के साथ बाबू जी चल रहे थे। बिना देखे ही उसी हालत में उन्होंने अपनी धोती से एक म्यान वाली कटार निकाली और नसीम को देते हुए कहा:

"ले बेटी! इसे संभाल कर रखना, मुसीबत के समय काम में लाना; दुश्मन को मारना पड़े या खुद को, लेकिन किसी के हाथ न आना"।

नसीम ने कटार ले ली और तेजी से बाबू जी को खींचकर गुफा में ऐसी जगह पहुंचा दिया जहां वे सुरक्षित रह सकें।

पृष्ठ 128

नर्म घास को छूते हुए कदम आगे बढ़ रहे थे और पास ही किसी झरने के बहने की आवाज़ सुनाई दे रही थी। बाबू जी को आराम कराने के लिए नसीम ने इस जगह को चुना और भारी गठरियों को एक ढलान वाली जगह पर रख दिया। फिर बिना यह सोचे कि कौन सा कपड़ा भारी है, उसने उसे निकालकर ज़मीन पर बिछा दिया और बाबू जी को सहारा देकर उस पर लिटाया और सामान में से एक कंबल निकालकर उन्हें उढ़ा दिया।

बाबू जी के कपड़े बारिश से भीग गए थे, लेकिन उन्हें बदलने का नसीम के पास समय नहीं था। ठंड के कारण बाबू जी के दांत बज रहे थे और उनकी उंगलियां अकड़ गई थीं। नसीम ने बिना इस बात की चिंता किए कि बाकी साथी कहाँ हैं और क्या कर रहे हैं, बाबू जी के हाथों और पैरों को जल्दी-जल्दी दबाना शुरू कर दिया। उसके अपने हाथ भी काफी ठंडे थे, जिन्हें वह मुंह की भाप और बगल में दबाकर गर्म करती रही। इसी दौरान उसे बाहर से शोर सुनाई दिया और वह बिना कुछ सोचे-समझे बाहर की ओर दौड़ पड़ी।

पृष्ठ 129

अपनी जगह से उठकर नसीम उस ओर दौड़ी जिधर से शोर सुनाई दे रहा था। अंधेरे में आवाज़ की दिशा में वह टटोलती हुई आगे बढ़ रही थी। अब उसे औरतों और बच्चों की चीखें साफ सुनाई देने लगीं।

उसके कदम रुक गए, खतरे के एहसास से उसका दिल परेशान हो उठा, लेकिन फौरन उसे बाबू जी की कटार याद आ गई। उसने जेब से उसे निकालकर हाथ में पकड़ा और आगे बढ़ गई। बाबू जी को उस हालत में छोड़ आने की बेबसी उसे परेशान कर रही थी, उसके कदम एक बार फिर रुके और वह वापस लौटना चाहती थी, लेकिन तभी "मार दो, पकड़ लो" की आवाज़ें साफ सुनाई देने लगीं। वह फिर उसी तरफ चल पड़ी। वह बिना किसी डर के, कि कोई उस पर हमला कर सकता है,

पृष्ठ 130

वो बराबर चिल्लाते हुए आगे बढ़ रही थी: "अज़ीज़ा, भाई जान...---- लेकिन बेकार...!"।

तभी उसने दूर से मशालें लिए हुए लोगों को अपनी ओर आते देखा। मशालों की रोशनी में नसीम की पुतलियां उसी ओर घूम गईं, जहाँ कई खूंखार चेहरे वाले लोग हाथों में तेज तलवारें और लाठियां लिए सामने आने वालों को ज़मीन पर गिरा रहे थे।

नसीम ने देखा कि एक बड़ा साया कुछ फासले पर तीन मासूम लोगों को अपने में छिपाए हुए है, जिनमें एक नौजवान लड़की भी थी। उनके करीब पहुंचते ही लुटेरों के हथियार रोशनी में चमक उठे और नसीम के देखते ही देखते वे तीन लाशों का ढेर हो गए। फिर रोती हुई उस नौजवान लड़की के मजबूत हाथों पर भी अंधेरे में आकर बिजली जैसी चमक उतरी।

नसीम ने एक ऊँची और नुकीली चट्टान की आड़ में खुद को छिपा लिया, जहाँ से उसे कोई देख न सके। वहाँ खड़े होकर उसने मशालों की रोशनी में दर्दनाक चीखें सुनीं जो बार-बार सुनाई देतीं और फिर खामोश हो जातीं। उसने कई नौजवान लड़कियों को वहां से ले जाते हुए देखा। फिर उसने ट्रंक, जेवर और गठरियों के इकट्ठे किए जाने का नज़ारा देखा। फिर उसकी आँखों के सामने एक और दिल दहला देने वाला नज़ारा आया, जिसमें उसने औरतों, मर्दों की गर्दनों, जेबों, नाक और कानों में...

पृष्ठ 131

जो कुछ भी मिला उसे वे लूटते रहे। उसने लाशों के कपड़े हटाकर उन्हें टटोलते हुए देखा। लुटेरों का काम केवल उन्हें लूटने तक सीमित था। वे बहुत से कपड़ों की सलवारें और कमीजें, जो उन्होंने पुरुषों के शरीरों से उतारी थीं, उनमें से कस्तूरी के टुकड़ों की थैलियां और अन्य चीजें निकल रही थीं।

तलवारों और लाठियों के निर्मम प्रहारों से पहली ही चोट में बदनसीब की रूह फना (खत्म) हो जाती थी। यह खौफनाक नज़ारा देखना नसीम के लिए नागवार था, उसने अपनी आंखें बंद कर लीं। उसे यह ख्याल ही न रहा कि वह उसी हालत में ठिठकी हुई खड़ी रही।

थोड़ी देर बाद उसने अपने शरीर को हिलाने की कोशिश की, आंखें खोलीं तो उसे तेज रोशनी दिखाई दी। उसे पता न चला कि यह आग किसी ने जानबूझकर लगाई है या किसी मशाल के गिरने से खुद लग गई है। उसी रोशनी में उसने देखा कि चारों तरफ खून का कीचड़ हो रहा है। कई लाशें ऊंची और नीची जगहों पर बिखरी पड़ी थीं, जिनके शरीरों को हथियारों की चोटों से बुरी तरह बिगाड़ दिया गया था।

नसीम ने घबराकर फिर आंखें बंद कर लीं। न मालूम कब तक वह उसी हालत में खड़ी रही। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि वह होश में है या बेहोश। नसीम ने उठ कर रोशनी की तरफ बढ़ने की कोशिश की।

पृष्ठ 132

वह बेहोशी की हालत में आगे बढ़ती चली जा रही थी। उसकी दिमागी मशीन रुक गई थी, सोचने की ताकत उसमें नहीं बची थी। उसी हालत में वह गुफा के बाहर पहुंच गई। बाहर की साफ हवा लगते ही उसकी दिमागी ताकत वापस आ गई।

बाहर पथरीले मैदान में पहुंचकर नसीम ने चारों तरफ नजर दौड़ाई। बादल अभी बहुत घने थे, सूरज अभी पूरा नहीं निकला था। लेकिन सामने की पहाड़ियों पर धुंधले साये दिखाई देने लगे थे। कुछ फासले से उसे सुनाई दिया,

"भाइयों! आप भी मुसलमान हैं, हम भी। हम आपके सामने खुदा और रसूल की दुहाई देते हैं। बहुत हो चुका, पहले ही घरों से बर्बाद होकर आए हैं। ये मरे हुए लोगों को मारने से आपको क्या हासिल होगा? जो कुछ इनके पास है, वह ले लीजिए"।

इसके जवाब में कहा गया, "कौन कहता है कि आप मुसलमान हैं? बल्कि काफिर हैं, जो काफिरों की मदद कर रहे हैं। भाग जाओ यहाँ से, वरना एक को भी जिंदा नहीं छोड़ेंगे"।

बाहर की रोशनी में अब उसे हर चीज नजर आने लगी थी। इन नजारों ने नसीम के दिमाग को एक बार फिर सुन्न कर दिया। वह बुलंद आवाज में रोती-चिल्लाती अपने रिश्तेदारों के नाम पुकारती हुई भागी जा रही थी। कहीं लाशों के चक्कर काटती हुई, कहीं उनके ऊपर से गुजरती हुई। उसकी अपनी आवाज के अलावा गुफा में गूंज कर कोई जवाब नहीं आया, कुछ भी सुनाई न देता था।

पृष्ठ 133

इस दर्दनाक और बेहोशी की हालत में नसीम को बाबू जी की याद आई और उसका दिल चिल्लाकर बोला,

"बाबू जी ! बाबू जी ! आप कहाँ हैं? खुदाया अब मैं क्या करूँ?"।

और तभी उसे कानों में एक धीमी और दुख से भरी हुई आवाज सुनाई दी। "राम-राम कहते रहो, धरे रहो मन धीर , "।

जिसे सुनते ही उसके पैरों में ताकत आ गई। वह उसी दिशा में भागी। जैसे ही नसीम बाबू जी के करीब पहुंची, वह उनके गले से लग गई। अब उसके दिल और दिमाग जवाब दे चुके थे। उसका सिर बाबू जी के सीने से लग गया।

अपने सीने पर रखे हुए नसीम के सिर पर बाबू जी धीरे-धीरे हाथ फेर रहे थे। जैसे ही बाबू जी ने देखा कि वह होश में आ रही है, तो उन्होंने पूछा, "नसीमा! कैसी तबीयत है, बेटी!"।

पृष्ठ 134

नसीम ने सिर उठाकर बाबू जी की शांत और प्यार भरी आँखों में झाँका और उनके हाथों को अपने हाथों में दबा लिया।

"बाबू जी ! आप? आप?"।

"मैं तुम्हारे पास हूँ, बेटी!" बाबू जी ने कहा। एक अंगड़ाई लेकर नसीम होश में आ गई। उसकी आँखों में कई तरह के सवाल थे, उसने बिना कुछ पूछे सवालिया नज़रों से देखा।

"बेटी! जब तुम मुझे छोड़कर चली गई और वहाँ मारपीट शुरू हो गई, तो मैं बहुत घबरा गया। आँखों के सामने यह जुल्म होता देख रहा था, मगर मजबूर था, कुछ भी न कर सकता था। यहाँ तक कि अंधेरे में चलना भी मेरे लिए मुश्किल था। लाचार होकर मैं बैठा रहा और तुम्हारे इंतज़ार में घर में गिरफ़्तार रहा। मुझे यकीन हो गया था कि हमारे सभी साथी मार दिए गए हैं। मैंने भगवान से उनकी मर्ज़ी के ख़िलाफ़ कुछ नहीं माँगा था। आज पहली बार गिरगिड़ाया कि भगवान! अगर तेरी यही मर्ज़ी है तो मैं भी मर्ज़ी के आगे सर झुकाता हूँ, लेकिन मेरी नन्हीं बच्ची को न छीन। जब कि बिना मांगे तूने मुझे सब कुछ दे रखा था।" इसके आगे वह कुछ न बोल सका।

पाँच मिनट इसी खामोशी में गुज़र गए। यकायक नसीम खड़ी हो गई, "बाबू जी ! एक बार मुझे देख लेने दीजिए बाहर की क्या हालत है।"

उसके पीछे लाठी संभालते हुए बाबू जी भी खड़े हो गए।

"बेटी! मुझे छोड़कर न जा। चल मैं भी साथ चलता हूँ। मगर बच्ची! अब मुझे छोड़कर न जा, जब मेरी आँखें हमेशा के लिए बंद हो जाएं।"

पृष्ठ 135

बड़ी होशियारी से बाबू जी को ठोककर (सहारा देकर) और बचाते हुए नसीम बाहर के दरवाजे की तरफ बढ़ी। सबसे पहले उनकी नज़र जिस चीज़ पर पड़ी, वह एक साथ पड़ी चार लाशें थीं, एक माँ और उसके दो बच्चे और एक अधेड़ मर्द, जो शायद उसका शौहर रहा होगा। चार लाशें एक-दूसरे के ऊपर पड़ी थीं, जिससे स्पष्ट था कि मरने से पहले इन लोगों ने एक-दूसरे पर गिरकर मौत के हमले से बाद में बचने की कोशिश की थी, पर चारों को बेदर्दी से काट दिया गया था।

नसीम इस मंज़र को ज्यादा देर तक नहीं देख सकी और उसने अपनी आँखें छिपा लीं। वहाँ से हटकर जैसे-जैसे वे आगे बढ़ते गए, उन्होंने देखा कि उसके अलावा वहाँ कोई जीवित नहीं था। इस बदहाली में उन्होंने पहली औरत की लाश देखी और दूसरी औरतों की भी वही हालत थी, जिन औरतों ने डर के मारे ज़ेवर अपने हाथों और कानों में पहन रखे थे। और अंचल में छिपा लिए थे कि अगर उनकी गठरियाँ ले ली जाएँ, तो कम से कम ये तो बाकी रह जाएँगी। लेकिन इन ज़ेवरों को जिस तरह नोचा-खसोटा गया था, वह साफ जाहिर था।

उस खौफनाक मंजर को देखते हुये वे बाहर निकल आए।

बाहर फैली रोशनी अब सब कुछ दिखने लगी थी। बादल छंट चुके थे और मैदान में बेशुमार लाशें इधर-उधर बिखरी पड़ी थीं। बाबू जी को देखकर दुख होगा इस खयाल से नसीम ने बाबू जी को एक...

पृष्ठ 136

...ऊंचे पत्थर की आड़ में बैठा दिया और खुद आगे बढ़ी, बाबू जी की दी हुई कटार उसके हाथ में थी। सबसे पहले उसकी नज़र चौधरी फजल करीम के बेटे और उसके साथियों की लाशों पर पड़ी, जो

बेचारों ने उनकी जान बचाने के लिए अपने घरों से निकले थे, लेकिन उन्हें बचाते हुए खुद मौत के मुँह में चले गए।

नसीम ने बारी-बारी उन सब पर इज्जत और सम्मान की नज़र डाली, जैसे कोई अपने पीर-ओ-मुर्शद को देखता है। उसकी आँखें इस वक्त आँसुओं से भरी थीं, बार-बार वह कहती और उनके घावों पर जख्म लगा रहा था कि अगर मालूम होता कि इन बेचारों को आज मरना ही है तो क्यों हम इन्हें साथ ले चलते? हम पर तो मुसीबत सवार ही थी, जो भी हालत हो बर्दाश्त करनी थी, लेकिन यह! जो दो आदमियों की लाशें थीं, उन्हें खास तौर पर उन्हें तलाश करने में मुझे कोई दिक्कत न उठानी पड़ी। बड़े शाह और अज़ीज़ की लाशें साथ-साथ पड़ी थीं, उनके जिस्म गोलियों और चेहरे से छलनी हो गए थे। दोनों लाशें एक-दूसरे के करीब पड़ी थीं, मानो मरने वाले ने एक-दूसरे से जुदा होना पसंद न किया।

कटे खंभे की तरह नसीम उन लाशों पर गिर पड़ी। "वीर रे ...! मेरे वीरों कि चौड़ी छाती --- ...!" पुकारती हुई वह एक से लिपट जाती, फिर दूसरे से।

पृष्ठ 137

रो रो कर वे दोनों सोए हुए शेरों को नींद से उठा रही थी , लेकिन कौन जागता? आखिरी सिसकियाँ भरते हुए उसे बाबू जी का ख्याल आया, जैसे वह उन्हें अकेला छोड़कर आई है और उसी तरह रोती-चिल्लाती वह वापस लौट पड़ी।

बाबू जी की हालत उस वक्त नसीम को बहुत अजीब और दुखद नजर आ रही थी। मानो उसके दिल से खुशी या गम के जज्बात हमेशा-हमेशा के लिए खत्म हो गए हों।

वह पहले की तरह ही अपने पाश (आगोश) में खोया हुआ "राम-राम ---" कह रहा था।

नसीम को देखकर बाबू जी कहने लगे, "उसकी मर्ज़ी को कोई भी टाल नहीं सकता, कोई भी टाल नहीं सकता।"

लेकिन नसीम इस बात पर और अधिक विचलित हो गई। उसकी आवाज़ रुंध गई और उसकी आँखों से आँसुओं की धारा बहने लगी। वह बाबू जी की आगोश में गिर पड़ी।

सूरज की लाली धीरे-धीरे धूप में बदलती जा रही थी।

बाबू जी की गोद में नसीम गहरे ख्यालों में डूब गई।

आखिर बाबू जी ने उसे झिझोड़ते हुए प्यार भरी आवाज़ में पुकारा, "नसीमा बेटी!"

नसीम चुप रही।

बाबू जी ने फिर पुकारा, "शाम होने से पहले हमें पहुँच जाना है,

पृष्ठ 138

वहाँ से करीब ही पक्की सड़क है, शायद वहाँ कोई सवारी मिल जाए।"

"चलिए बाबू जी !" कहते हुए नसीम उठ खड़ी हुई।

रास्ता बहुत ऊबड़-खाबड़ था, बाबू जी दाएं हाथ में लाठी लिए थे और बायां हाथ नसीम के कंधे पर था। वे संभल-संभलकर चले, उनके होंठों पर बार-बार वही शब्द दोहराए जा रहे थे। दोपहर ढल रही थी और वे दोनों मुसाफिर लगातार चलते जा रहे थे। मीलों तक खतरनाक जंगल था, न कोई सड़क थी और न कोई पगडंडी। बाबू जी अपने अंदाज़ से ही चले जा रहे थे, क्योंकि वे अपनी ज़िंदगी में कई बार इस रास्ते से गुजर चुके थे।

शाम होने लगी और साथ ही उनकी चिंताओं में भी इज़ाफ़ा होने लगा। अगर रास्ते में अंधेरा हो गया तो वे आगे किस तरह बढ़ेंगे? एक बार तो रास्ता भटक गए, तो फिर पता न चला कि किधर जाएँगे । चलते-चलते अचानक नसीम को सरसराहट की आवाज़ सुनाई दी, जो उसके कानों को छूती हुई गई। साथ ही उसे धीमी सी आवाज़ सुनाई दी, मानो इस वीरान जंगल में कोई देवता अपनी धुन में तार छेड़कर गीतों की मिठास बाँट रहा हो।

"बाबू जी !" नसीम ने पूछा, "यह कैसी आवाज़ है?"

"सहाँ की!" बाबू जी ने जवाब दिया।

यह सुनकर नसीम का दिल झूम उठा। उसके कदमों में ताज़गी आ गई।

"मेरा सहाँ , मेरे बचपन का साथी, मेरे ख्वाबों का साथी!"

पृष्ठ 139

"मेरी खुशियों का साथी , मेरा सहाँ!" वह पुकारने लगी।

थोड़ी देर बाद नसीम झरने के किनारे बैठी हुई थी, उसके ठंडे, साफ और पारदर्शी पानी के साथ खेल रही थी। बाबू जी भी अपनी थकान दूर करने के ख्याल से कुछ फासले पर हरी घास पर लेट गए।

मासूम बच्ची की तरह नसीम बहते हुए पानी को देखते हुए उससे बातें कर रही थी, "मेरे सहाँ के पानी, तु चाकरी के पास से गुज़रा होगा, हमारे गाँवों की दीवारों को छूकर आया होगा। मैं तुझे कभी न भूलूँगी, रे मेरे प्यारे सहाँ ! कभी मैं तेरे साथ बैठूँगी , कभी तेरे पानी में अपनी सहेलियो के साथ मैं तैरूँगी ?"

"अरे, तू तो पागल है!" अचानक किसी के छूने पर नसीम ने अपनी इस बातचीत को रोक दिया।

बाबू जी का हाथ उसके कंधे पर थे और वे कह रहे थे, "छोड़ बेटा , उठ खड़ा हो, हमें अभी काफी दूर जाना है।"

नसीम के सपनों का सिलसिला टूट गया। वह उठकर खड़ी हो गई और बाबू जी की तरफ देखकर पूछने लगी, "बाबू जी ! हम कहाँ जा रहे हैं?"

"बेटी!" बाबू जी ने जवाब दिया, "इसी बहते हुए पानी से पूछ, ये कहाँ जा रहा है? क्या तुझे यह बता सकेगा?"

"मगर बाबू जी !" नसीम को जैसे ख्वाब में बोल रही हो, एक आह भरकर पूछने लगी, "हम फिर कभी नहीं आएंगे अपने वतन?"

बाबू जी का जिस्म काँप उठा। उन्होंने चाहा कि सिर हिलाकर 'न' कह दें, लेकिन यह जवाब उनकी ज़बान से न निकला। उसका यह अहसास और अधिक गहरा हो गया।

पृष्ठ 140

"अल्लाह ही अल्लाह है और कुछ नहीं।" नसीम अपना सवाल भूल चुकी थी।

अपनी सलवार को घुटनों तक चढ़ाया, बाबू जी को सावधानी से सहारा देते हुए सहाँ के पानी को चीरते हुई पार कर दूसरे किनारे की ओर बढ़ रही थी ।

और सहाँ कि कुदरती वीणा जैसी आहिस्ता सी सायं सायं की आवाज उसके गीतों के सुर में "अल्लाह ही अल्लाह" की सदा कर दिलकश समां बाँध रही थी।

सहाँ पार करने के बाद दो-तीन फलांग आगे जाकर नसीम ने एक घने अंधेरे में देखा, वह गाँव के पीपल का पेड़ था। दोनों मुसाफिर जिन्हें अपनी मंजिल का पता था, इस अंधेरे में उम्मीद लिए दुनिया की परवाह किए बिना उसी दरख्त की दिशा में आगे बढ़े जा रहे थे। उनकी परछाइयां उस वक्त धुंधली यादों के जरिए कयामत जैसा दुःख भरे अंजाम को लिखती जा रही थीं, बाबू जी की लाठी ज़मीन से

बज-बजकर एक बेसुरी आवाज़ पैदा कर रही थी और इस आवाज़ में शामिल होकर एक रूहानी जंगल की खामोशी को चीर रही थी।

"राम-राम कहते रहो, धरे रहो मन धीर ,

कारज आप संवारेंगे, राम चंद्र रघुवीर ।"

***** **समाप्त** *****

sjeet